Sadanlal Sanwaldas Khanna Mahila Mahavidyalay
A Constituent College of University of Allahabad
Accredited 'Grade A' by NAAC
Status of College with Potential for Excellence, Phase II
Supported by Star College Scheme,;DBT & Curie Scheme ; DST
179-D, Attarsuiya, Prayagraj, UP, 211003

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

भारतीय विरासत

Indian Heritage (World Heritage Day)

धरोहर

Chief Editor:
Principal
Prof. Lalima Singh

IQAC Co– Ordinator:
Dr. Manjari Shukla

Editor :
Dr. Meenu Agrawal

Editorial Members:
Dr. Ritu Jaiswal
Dr. Nishi Seth
Dr. Priyanka Gupta

मैं चारण हूँ मृतक विश्व का,
सब इतिहास मुझे कहते हैं,
सिंहासन को छोड़ लोग
मेरे घर आते ही रहते हैं।

धूलों में जो चरण.चिह्न हैं,
पत्थर पर जो लिखी कभी है
मुझे ज्ञात है, इस खँडहर के
कण.कण में जो छिपी व्यथा है।

ईंटों पर जिनकी लकीर,
पत्थर पर जिनकी चरण.निशानी
जिनकी धूल गमकती मह.मह,
उन फूलों की सुनो कहानी।

रामधारी सिंह दिनकर

ई बुलेटिन में प्रकाशित लेखों में प्रस्तुत तथ्य, विवरण, चित्र आदि लेखकों द्वारा संग्रहीत एवं प्रस्तुत हैं। सम्पादक/सम्पादक मंडल/महाविद्यालय किसी भी अंश /विचारों, चित्रों विवरणों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय

संघटक महाविद्यालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

नैक द्वारा 'ए' ग्रेड प्राप्त

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

धरोहर

Vol. 4, Year 2024

Page 2

भारतीय विरासत

Indian Heritage (World Heritage Day)

प्राचार्या की कलम से
उद्बोधन

Education is the most powerful weapon which can transform the world. Education not only, drives away ignorance but also, emboldens a person to a righteous thought and action. The college aims at inculcating a sense of responsibility in students through a well - planned academic programme. In order to accomplish our vision we are prepared to take as much effort as possible for the betterment of academic scenario. I wish the best of fortune, peace and prosperity to all our students who are sure to find a new meaning of life by acquiring the real wealth of knowledge.

प्राचार्या

प्रोफसर लालिमा सिंह

सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज

Chief Editor:
Principal
Prof. Lalima Singh

IQAC Co– Ordinator:
Dr. Manjari Shukla

Editor :
Dr. Meenu Agrawal

Editorial Members:
Dr. Ritu Jaiswal
Dr. Nishi Seth
Dr. Priyanka Gupta

सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय

संघटक महाविद्यालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

नैक द्वारा 'ए' ग्रेड प्राप्त

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

धरोहर

Vol. 4, Year 2024

भारतीय विरासत

Indian Heritage (World Heritage Day)

विरासत के प्रति गौरव

विश्व के कुछ स्थल, प्राचीन खंडहर, ऐतिहासिक स्मारक, प्राकृतिक परिदृश्य और सांस्कृतिक परम्पराओं में क्षेत्र विशेष की अद्भुत व असाधारण जानकारी व समृद्ध इतिहास निहित है। इस प्रकार की ऐतिहासिक संरचना, पुरातात्विक स्थलों और सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा और महत्व के संबंध में जागरूकता बढ़ाने एवं समय के साथ जर्जर होती इन विरासतों के स्वर्णिम इतिहास और इनके निर्माण को बचाये रखने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 18 अप्रैल को विश्व विरासत दिवस आयोजित किया जाता है। यदि आने वाली पीढ़ियां विश्व की इन बहुमूल्य परम्पराओं स्थल, स्मारक के बारे में नहीं जानेंगीं तो इनका कोई मोल नहीं होगा और वे काल कवलित हो जाएंगी। अतः यूनेस्को द्वारा शांति निकेतन को 41वां तथा कर्नाटक के होयसल मंदिर समूह को 42वां विश्व धरोहर घोषित किया जाना और भारत का 2025 तक विश्व विरासत समिति (WHC) का सदस्य नामित होना इस क्षेत्र में निरन्तर उन्नति का आश्वासन है। इटली, स्पेन, जर्मनी, चीन और फ्रांस में 42 या इससे अधिक विश्व धरोहर स्थल हैं, भारत के पास भी 34 सांस्कृतिक, 7 प्राकृतिक और 1 मिश्रित यानि कुल 42 विश्व धरोहर है। भविष्य में अनेक ऐसे स्थल अभी चिह्नित होना शेष है। हर्ष का विषय है अपने दायित्व बोध का परिचय देते हुए महाविद्यालय का प्राचीन इतिहास और पुरातत्व विभाग ''धरोहर'' का चतुर्थ अंक प्रकाशित कर छात्राओं को विश्व धरोहर के महत्व और सुरक्षा के संबंध में जागरुक बनाने का सराहनीय कार्य कर रहा है। 'धरोहर' के सफल प्रकाशन हेतु मंगल कामनाएं।

डॉ मंजरी शुक्ला,
समन्वयक,
आन्तरिक गुणवत्ता आश्वासन प्रकोष्ठ,
एस.एस.के.

सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय

संघटक महाविद्यालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

धरोहर

Vol. 4, Year 2024
Page 4

भारतीय विरासत

Indian Heritage

Inside :

देवगढ
हम्पी
कांची
कुशीनगर
अयोध्या
अग्रोहा
महोबा
सारनाथ
ऐहोल
वैशाली
पाटलिपुत्र
कोलकाता
कोच्चि
अजन्ता
पुस्तक परिचय

सम्पादकीय

यह टूटा प्रासाद सिद्धि का, महिमा का खँडहर है, ज्ञानपीठ यह मानवता की तपोभूमि उर्वर है। इस पावन गौरव–समाधि को सादर शीश झुका।
कल्पने! धीरे–धीरे गा! – दिनकर

माननीय प्रधानमंत्री ने आजादी के अमृत काल में पंच प्रण के संकल्प का आहवान किया। **पंच प्रण में तीसरा प्रण है–विरासत पर गर्व।** उन्होने कहा कि यही वह विरासत है जिसने भारत को स्वर्णिम काल दिया है। सरकार की ओर से अगले 25 वर्षों के कालखंड को 'अमृत काल' नाम दिया गया है। **पंच प्रण** के माध्यम से देश की युवा पीढी को, सशक्त भारत की बुनियाद को समर्थ बनाने की दिशा में यह एक प्रभावी कदम है।

नई शिक्षा नीति **भारतीय ज्ञान परम्परा** के उपयोग से नए भारत के सृजन और स्वज्ञान परम्परा को उजागर करने के लिए अनुसंधान पर बल देती है। भारत में अति प्राचीनकाल से योग, आयुर्वेद, सुश्रुत चिकित्सा पद्धति, वनीकरण, अनुशासन, पशु चिकित्सा, ज्योतिष विद्याा, इंजीनियरिंग को समाहित किए वास्तु विद्या, भवन निर्माण शैली के रूप में आकिटेक्चर कौशल, विशिष्ट और सटीक काल गणना पद्धति, गणितीय ज्ञान, औषधिपरक पौधों से चिकित्सा, जैसे ज्ञान कोष को साहित्य में संरक्षित किया गया है। इतना ही नहीं नगर विन्यास, प्रशासनिक व्यवस्था, कराधान, दण्ड,, न्याय क्षेत्र में आज भी बहुत से पक्षों में प्राचीन भारतीय ज्ञान समयानूकूल परिवर्तनों के साथ प्रासंगिक हो सकतें हैं, उनसे सीख लेने की जरूरत है।

भारत सरकार ने अनेकशः समय समय पर नई शिक्षा नीति में पर्यटन को बढावा देने, अपनी धरोहरों के प्रति संवेदनशील होने ,उनकी संरक्षा के प्रति युवा वर्ग को जागरूक होने, धरोहर क्लब बनाने, स्थानीय कला, परम्परा, संस्कृति की विशिष्टताओं को जानने का आवाहन किया है ।

इन्ही निहितार्थो को लेकर छात्र पीढी को 'उत्तिष्ठ, जाग्रत, प्राप्त वरान्निबोधत' का सन्देश देते हुए विरासत के एक बिन्दु को लेकर, आजादी के 75वें वर्ष आयोजन में 75 प्राचीन नगर/स्थल धरोहर के संकल्प को पूरा करने की दिशा में एक प्रयास है। भारतीय विरासत को समर्पित बुलेटिन का यह चतुर्थ अंक है। जिन शोध प्रेमियों एवं शोध छात्रों ने इस बुलेटिन के लिए अपने आलेख दिए वे धन्यवाद के पात्र है। छात्रों, अभिव्यक्ति का यह मंच आपके लिए है। सम्पादक मंडल इस बुलेटिन में उन विद्वत मह. ानुभावों विद्वत्जनों, माननीयों के प्रति आभारी है जिन्होने अपने ज्ञान से समन्वित आलेख के माध्यम से हमारे कार्य को पहचान दी है। सदा की तरह बुलेटिन को प्रारम्भ करने से लेकर इस अंक के ई प्रकाशन की सहर्ष अनुमति, हरसंभव सहायता, मार्गदर्शन के लिए प्रबन्धवर्ग के सभी माननीय सदस्यों, प्राचार्या, आन्तरिक गुणवत्ता प्रकोष्ठ की समन्वयक के प्रति विभागीय सम्पादन टीम की ओर से धन्यवाद मिश्रित अभिवादन और ज्ञानसरणि में अवगाहन के लिए जिज्ञासु बनाने वाले विभागीय इतिहासविदों और माननीय गुरूजनों को सादर प्रणाम निवेदित है।

सम्पादिका, डॉ मीनू अग्रवाल

देवगढ़

डा0 ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव
रजिस्ट्रीकरण अधिकारी (से0नि0), पुरावशेष एवं
बहुमूल्य कलाकृति

उत्तर प्रदेश में बुन्देलखण्ड मण्डल के अन्तर्गत ललितपुर जनपद में देवगढ़ एक महत्वपूर्ण पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक केन्द्र है। ललितपुर से प्राप्त शकसंवत् 1560 के एक प्रस्तर अभिलेख में ललितपुर की स्थिति एक ग्राम के रूप में बतलायी गयी है, जबकि वर्तमानमें यह उत्तरप्रदेश का एक महत्वपूर्ण नगर हैं। ललितपुर के देवगढ़ में मूर्तियों के साथ–साथ अभिलेख भी बहुत अधिक मात्रा मे प्राप्त हुए है, जिसका पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्व है। देवगढ़ में जो भी अभिलेख मिले हैं, उनका आधार स्वतन्त्र प्रस्तर स्तम्भ रहा है या मन्दिर की दीवारें अथवा प्रतिमाएँ रही हैं। यहाँ से संवत् युक्त और संवत् विहीन दोनों प्रकार के अभिलेख पाये गये हैं। जो अभिलेख संवत् युक्त है वे विक्रमसंवत् 919 से विक्रम संवत् 1876 के बीच के हैं। जैन मन्दिर संख्या 12 का संवत् 919 का अभिलेख विशेष महत्वपूर्ण है जिसमें कहा गया है कि यह लुअच्छगिरि में कमलदेव के शिष्य श्रीदेव द्वारा स्थापित किया गया है। इससे पता चलता है कि देवगढ़ का प्राचीन नाम लुअच्छगिरि था।

देवगढ़ के अभिलेखों के राजनीतिक पक्ष के सन्दर्भ में कीर्तिवर्मन कालीन अभिलेख प्रचुर राजनीतिक सामग्री प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार देवगढ़ कीर्तिवर्मन के साम्राज्यान्तर्गत तथा। पुनः विक्रमसंवत् 1270 के अभिलेख में महासामन्त श्री उदयपाल की चर्चा की गयी है तथा विक्रमसंवत् 1693 और 1695 के अभिलेख, जो जैनतीर्थंकर के पादपीठ पर अंकित हैं, महाराजाधिराज उदयसिंह और उसकी दो रानियों का उल्लेख करते हैं, जिन्होंने इस मूर्ति का निर्माण कराया था। जैन मंदिर संख्या 2 के श्री आदित्यनाथ के पादपीठ का लेख लोकनन्दिन के शिष्य गुणनन्दिन, जैनमन्दिर 12 के संवत् 919 का अभिलेख कमलदेव के शिष्य श्रीदेव तथा संवत् 1016 का अभिलेख रत्नकीर्ति के शिष्य देवेन्द्रकीर्ति और देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य त्रिभुवन कीर्ति का उल्लेख करता है। इस प्रकार देवगढ़ के अभिलेख ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं गुरू शिष्य परम्परा का भी उल्लेख करते हैं।देवगढ़ में ब्राह्मी, नागरी के साथ–साथ शंखलिपि में भी उत्कीर्ण प्राप्त हुए हैं जो इस स्थल के महत्व को प्रकाशित करते हैं। देवगढ़ में अभिलेख के साथ–साथ स्थापत्य एवं मूर्तियाँ भी प्रभूत मात्रा में प्राप्त हुई हैं जिनमें ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध धर्मो से सम्बन्धित हैं। ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित दशावतार मन्दिर विशेष महत्वपूर्ण है, जिसमें शेषशायी विष्णु की प्रतिमा, नरनारायण और गजेन्द्रमोक्ष पट्ट कला एवं विषय दोनों दृष्टियों से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त पहाड़ी पर नृवराह की प्रतिमा भी महत्वपूर्ण है, जिसका मंदिर धराशायी हो गया है। बेतवा के किनारे घाटियों में भी महिषासुर मर्दिनी, सप्तमातृका पट्ट, एक मुखी शिवलिंग आदि महत्वपूर्ण हैं।

बुद्ध प्रतिमा, देवगढ

देवगढ़ में जैन धर्म से सम्बन्धित अनेक तीथकरों की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। शान्तिनाथ का मंदिर एवं उसमें स्थापित मूर्ति भी उल्लेखनीय है। जैन तीर्थकरों में आदिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ एवं शान्तिनाथ की प्रतिमाएँ अधिकमात्रा में उपलब्ध हैं। ऋषभनाथ के पुत्र बाहुबली गोमटेश्वर की मूर्तियाँ भी जैन धर्म की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। पहाडी के नीचे एक जैन संग्रहालय भी बना है जिसमे चक्रेश्वरी, अम्बिका आदि की अत्यन्त सुन्दर मूर्तियाँ सुरक्षित है।देवगढ़ मे उपाध्यायों की मूर्तियाँ भी निर्मित हैं जिससे उनका सांस्कृतिक महत्व ज्ञात होता है।

हम्पी

– प्रो. (डॉ.) धीरेन्द्र सोलंकी (आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष)
प्रा.भा.इ.सं.पु. अध्ययनशाला,विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

हम्पी युनेस्को विश्वधरोहर है जो कर्नाटक राज्य के विजयनगर (बेलरी) जिले में तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित है। यह प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को **किष्किन्धाक्षेत्र, भास्करक्षेत्र, पम्पाक्षेत्र, पम्पापुर, विरूपाक्षक्षेत्र, विरूपाक्षपट्टनम्** तथा **विजयविरूपाक्ष** के अभिधान से जाना जाता था। यह नगर मध्यकालीन विजयनगर साम्राज्य की राजधानी था। यह चारों ओर दुर्ग से वेष्टित था। मध्यकालीन फारसी एवं युरोपी यात्रियों के विवरणानुसार हम्पी तात्कालीन विश्व में द्वितीय सबसे बड़ा तथा भारत का सबसे समृद्धिशाली नगर था।

अत्यन्त प्राचीन काल से हम्पी नगर का वर्णन भारतीय साहित्य में प्राप्त होता है। **रामायण** एवं **महाभारत** में इस क्षेत्र वर्णन प्राप्त होता है। **स्थलपुराण** के अनुसार इस क्षेत्र में ही ध्यानस्थ शिव पर कामदेव ने अपने पंच बाणों को मारा था जिसके प्रतीकार स्वरूप शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया था। एक अन्य अनुश्रति के अनुसार इस क्षेत्र में शिव को प्राप्त करने हेतु पार्वती तपस्विनी (जिसे क्षेत्रिय भाषा में पाम्पा कहा जाता है) द्वारा पंचाग्नि तप किया गया था। पार्वती के पम्पा अभिधान के आधार पर ही इस क्षेत्र का नाम 'पम्पाक्षेत्र' हुआ। यहीं '**पम्पा**' शब्द आगे चलकर प्राचीन कन्नड़ में '**हम्पा**' इस स्वरूप में प्रयुक्त किया जाने लगा। हम्पा शब्द का ही अप्रभंश '**हम्पे**' अथवा '**हम्पी**' हैं। रामायण के अनुसार यह वानरराज सुग्रीव के द्वारा शासित क्षेत्र था। हनुमान जी की मध्यस्था से राम तथा सुग्रीव के मध्य सन्धि इस क्षेत्र में हुई थी।

यहां के '**नित्तुर**' तथा '**उदेगाव**' क्षेत्र से **अशोक का अभिलेख** प्राप्त हुआ है जो यह इंगित करता है कि यह क्षेत्र कभी मौर्य सत्ता के अन्तर्गत आता था। इस क्षेत्र का उल्लेख बादमी चालुक्यों के अभिलेख में पम्पापुर के नाम से किया गया है। शंकरदिग्विजय के अनुसार आचार्य शंकर के द्वारा यहां एक मठिका की स्थापना की गई थी। यह मठिका '**विद्याशंकरमठ**' के अभिधान से प्रसिद्ध थी।

दशवीं शती में यह स्थान कन्नड़देश के प्रसिद्ध विद्याकेन्द्र के रूप में उभरा। कल्याणी के चालुक्यों द्वारा यहां कई दान दिये गये। 11वीं से 13वीं शती तक कई राजाओं एवं सामन्तों द्वारा '**विरूपाक्ष मन्दिर**' तथा '**हम्पादेवी**' के निमित्त दान दिये गये। 11वीं से 12वीं शती पर्यन्त होयसालों द्वारा यहां दुर्गा, शिव तथा हम्पादेवी के लिए मन्दिर का निर्माण किया गया।

14वीं शताब्दीं में दिल्ली सल्तन के सुलतान अल्लाउद्दीन खिलजी की सेना द्वारा होयसालों का पराभव कर उनकी राजधानी देवा. समुद्रम को नष्ट किया गया। इस काल से हम्पी कुछ समय के लिए उपेक्षित सा हो गया। होयसालों राजवंश के पश्चात् इस क्षेत्र में कामपिलिवंश का शासन रहा। मुहम्मद बिन तुगलक की सेना ने आक्रमण कर कामपिलिवंश का उच्छेद कर दिया।

सन् 1336 में कामपिलि वंश के भग्नावशेषों से विजयनगर साम्राज्य का उदय हुआ। स्वामी विद्यारण्य के सहयोग से हरिहर तथा बुक्क के द्वारा विजयनगर साम्राज्य की स्थपना की गई, इसी के साथ हम्पी का पुराना वैभव लौट आया। विद्यारण्य श्रृंगेरीमठ के बारहवें जगद्गुरू–शंकराचार्य थे। 15वीं शताब्दी के आते–आते विजयनगर साम्राज्य तथा उसकी राजधानी हम्पी अपने चरतोत्कर्ष पर थी। सन् 1565 में तालीकोट के युद्ध में **रामराय** की पराजय के साथ विजयनगर साम्राज्य का पतन हो गया। मुसलमान आक्रान्ताओं के गठबन्धन ने राजधानी हम्पी को छः मास पर्यन्त लुट कर श्रीविहीन कर दिया गया। सम्पूर्ण नगर को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया गया। इसके पश्चात् कालक्रम से इस क्षेत्र पर हैदराबाद निजाम, मराठाओं तथा अंग्रजों का अधिपत्य रहा। अंग्रजों ने कालान्तर में इस क्षेत्र को वाडियारवंश को हस्तान्तरित कर दिया। इस सम्पूर्ण कालखण्ड में हम्पी नगर विस्मृत रहा। सन् 1801 में कर्नल कोलिन मकेंजी द्वारा हम्पी का सर्वप्रथम सर्वोक्षण किया गया। इस सर्वेक्षण के पश्चात् भी हम्पी विस्मृत सा ही रहा। सन् 1856 में अलेक्सजेन्डर ग्रीन द्वारा यहां के भग्नावशेषों का चित्रण किया जिनका प्रकाशन सन् 1980 में किया गया।

हम्पी के स्थापत्य में **एहोल–पट्टडकल शैली** का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कुछ विद्वानों ने मालवा के परमारों की शैली का भी प्रभाव माना है। मतंग पर्वत पर निर्मत स्थापत्य, हम्पी बाजार, श्रीकृष्ण मन्दिर, ससिकेवलु गणेश मन्दिर, विरूपाक्षमन्दिर, विजयविठ्ठल मन्दिर आदि विशेष दर्शनीय स्थल हैं। हेमकुट पर्वत पर स्थित शिवलिंग तथा उत्तम–उत्तम षोडशताल की नृसिंह प्रतिमा विजयनगरशैली का प्रतिनिधित्व करती है। नृसिंह का अंकन 'योगलक्ष्मीनृसिंह' रूप में किया गया है। यद्यपि प्रतिमा भग्न है परन्तु इस प्रतिमा में उग्रता एवं सौम्यता का सहज संयोग विशेषरूप से दृष्टिगोचर होती है।

तात्कालीन विजयनगर भारतीय सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता था जिसकी चुड़ामणि हम्पी नगरी थी। हम्पी की वास्तु कला एवं मन्दिर स्थापत्य अद्भुत, अप्रतीम तथा अवस्मिरिणीय है जो भविष्य के भारत को अपने गौरवशाली इतिवृत्त की ओर सदैव संकेत करती रहेगी।

सन्दर्भसूची–

1. Longhurst,A.H.,*Hampi Ruins-Described and Illustrated*,Madras,1917
2. Devakunjari,D,*Hampi*,NewDelhi,1970

कांची

अनिमेष नागर, शोधछात्र,
प्रा.भा.इ.सं.पु. अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

संगमकाल से दक्षिणभारत में '**कांची**' नगर प्रसिद्ध रहा है। कांचीपुरम्, तमिलनाडु प्रान्त के तोण्डैमण्डलम् क्षेत्र में स्थित है। राजधानी चैन्नै से इसकी दूरी लगभग 72 किलोमीटर है। कांचीपुरम् अपनी **वास्तुकला**, **मन्दिरस्थापत्य** तथा **कांजीवरम् साड़ीयों** के लिए प्रसिद्ध है। 'कांची' पद दो पदो की संन्धि से बना है– **क** + **आंची** जिसका अर्थ होता है ब्रह्मा द्वारा पूजित। स्थलपुराणों में प्राप्त वर्णन के अनुसार कांची क्षेत्र में ब्रह्मा द्वारा शिव–**एकाम्र**, विष्णु–**वरदराज** तथा देवी **कामाक्षी** की आराधना की गई थी। इन तीनों देवताओं के विग्रह **रूद्रकोटि**, **पुण्यकोटि** तथा **कामकोटि** इन त्रिविध विमानों से सुशोभित देवालायों में प्रतिष्ठित है। सत्यव्रतक्षेत्र, कांजीवरम्, कांचीपुरम्, कोजीवरम्, कामपीठम्, कामकोटम्, कन्निकप्पु, भूलोक–कैलाश आदि इसके अपर अभिधान है। सनातन परम्परा के अनुसार 'कांची' सप्त मोक्षदायिनी पुरियों में एक है साथ ही द्वैतवादीशैवपरम्परा के पंचमहाभूतस्थलों में '**पृथिवीलिंगस्थल**' है। अपर प्रकार से अर्थ करने पर कांची का अर्थ 'मेखला' होता है, कांची भारतमाता की मेखला है। **ज्ञानसम्बन्धार्, अप्पार्, सक्कियार्, सुन्दरार्** आदि नायनारों तथा **पोईगै** आदि आलवारों द्वारा इसके महात्म्य का वर्णन अपने तमिल पदों में किया गया है। प्राचीनकाल से कांची स्मार्त, शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध आदि विविध सम्प्रदायों का केन्द्र रहा है। इस नगरी ने विश्व को अनेक विद्वान उपहार स्वरूप प्रदान किये है। कांची द्वैतवादीशैवमत के **कच्छपशिवाचार्य**; **शंकर, मुकशंकर** आदि जड़ब्रह्मवादी आचार्य; **रामानुज, निगमान्तदेशिक, पिल्लै लोकाचार्य** आदि विशिष्टाद्वैताचार्य ; **अरवण अडिगल, दिग्नाग, बोधिधर्म, बुद्धघोष, बुद्धदत्त, वज्रबोधि** आदि सौगताचार्य समेत कई विद्वानों की जन्मभूमि अथवा निवास स्थली रहीं है।

कांची उत्खनन में महापाषाणकाल के उपकरण, कृष्ण–लोहित मृदभाण्ड, गौरक मृदभाण्ड, रसेट चित्रित मृदभाण्ड, गेरूरंग के भाण्ड (**रोलेटेडवेयर**) , लाल रंग के चमकीले मृदभाण्ड (**एरोटाईलवेयर**), रक्त स्लिपवेयर, कृष्णस्लिपवेयर, कोर्स रक्तपात्र, धूसर स्लिपवेयर, धुमिलरक्त पात्र तथा **चीनी सेलाडोन पात्र** प्राप्त हुए है। उत्खननविवरण के अनुसार कांची का रोम तथा चीन से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित था।

कांचीनगर में लगभग विभिन्न राजवंशों के **650** अभिलेख मन्दिरों के स्तम्भ, भित्ति तथा वापीकुपों के शिलापट्टो पर उत्कीर्ण है। इनमें पल्लवों के 15, चोलों के 245, तेलुगु पल्लवों के 48, पाण्ड्यों के 12, होयशालों के 3, तेलुगु चोड़ों के 3, बनों का 1, काकतियों के 4, चेरों का 1, उत्तर पल्लवों के 7, शम्भुवर्यों के 10, विजयनगरसाम्राज्य के 160 तथा मुगलों के 2 अभिलेख हैं।

कांची का प्रथम उल्लेख संगमसाहित्य में प्राप्त होता है। **अहन्नुरू** तथा **पेरूंपनत्रूप्पदै** के अनुसार कांची तोण्डैमण्डलम् की चुड़ामणि है। पेरूंपनत्रूप्पदै के अनुसार **राजा तिरैयन्** का सम्बन्ध कांची से था। कांची परकोटे से सुरक्षित अत्यन्त सुन्दर नगरी थी तथा इसकी आकृती कमलपुष्पाकार थी। संगमकाल में कांची व्यापार तथा विद्या अध्ययन का प्रमुख केन्द्र थी। **ह्वेन त्सांग** ने अपने यात्रा विवरण में इस नगर का उल्लेख किया गया है। उक्त विवरण के अनुसार यहां पर **सम्राट अशोक** के द्वारा 100 फीट के स्तुप का निर्माण करवाया गया था। उत्खनन में यहां से **सातवाहन शासकों की ताम्रमुद्राएं** प्राप्त हुई है। अतः प्रतीत होता है यहां कभी सातवाहनों ने भी शासन किया था।

कांची की विशेष उन्नति पल्लव शासकों के काल में हुई। कांची को **'दक्षिण भारतीय स्थापत्य की जन्मभूमि'** कहा जा सकता है। इस शैली के विमानों के निर्माण का श्रीगणेश यहीं से हुआ। **मयिदावोलु प्रशस्ति** के अनुसार **युवामहाराजु शिवस्कन्दवर्मन्** की राजधानी कांची थी। **मन्चिकल्लु अभिलेख** में पल्लव राजा **सिंहवर्मन्** का वर्णन कांची के शासक के रूप में आया है। पल्लवशासकों में **नरसिंहवर्मन् द्वितीय** (राजसिंह) द्वारा सर्वप्रथम कांची में पाषाण से मन्दिरों का निर्माण करवाया। इन्हीं के द्वारा कैलाशनाथ मन्दिर का निर्माण करवाया गया था। वैकुण्ठपेरूमाल मन्दिर तथा मुक्तिश्वर के मन्दिर का निर्माण **पल्लवमल्ल नन्दीवर्मन् द्वितीय** द्वारा करवाया गया था। **नन्दीवर्मन् द्वितीय** के अभिलेख में कामकोट्ट (कामाक्षी के मन्दिर) का उल्लेख प्राप्त होता है। **महेन्द्रवर्मन्, नरसिंहवर्मन् द्वितीय** तथा **महेन्द्रवर्मन् तृतीय** के छः अभिलेख एकाम्रनाथमन्दिर, कैलाशनाथमन्दिर, कामाक्षीमन्दिर तथा मुक्तेश्वर मन्दिर से प्राप्त होते हैं।

कांची पर चोलशासकों के अधिपत्य का वर्णन **परकेशरी विजयालयचोल** के चतुर्थ वर्ष के अभिलेख में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त कांची से **परान्तकचोल, उत्तमचोल, राजराजाचोल** तथा **राजेन्द्र चोल** के अभिलेख यहां से प्राप्त हुएं है। **राजराजा तृतीय** के काल में कांची का पराभव पाण्ड्य राजाओं द्वारा कर लिया गया। कांची से राष्ट्रकुटों का कोई अभिलेख प्राप्त नहीं होता परन्तु राष्ट्रकुट अभिलेखों में कांची का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके पश्चात् कांची पर क्रमशः **कल्याणी के चालुक्य, होयशाल, तेलुगुचोलवंश, तेलुगु पल्लववंश** तथा **काकतियों** का अधिपत्य रहा। इसके पश्चात् कांची का अन्तर्भाव **विजयनगर साम्राज्य** में हो गया। विजयनगर के पतन के पश्चात् बहमानी वंश के सुलतान **मुहम्मद तृतीय** द्वारा इसका पराभव कर लिया गया। फरिश्ता तथा तबतबा ने इसका विवरण अपने इतिहास में दिया है। इसके पश्चात् स्वतन्त्रता के पूर्व तक अंग्रेज आदि के द्वारा यहां पर शासन किया गया। यथार्थ में कांची अपने धार्मिक महत्व, मन्दिरस्थापत्य, वास्तुकला, वस्त्रों तथा विद्वानों से भारतभूमि को अंलकृत करती हुई मेखला है जिसके द्वारा मां भारती के सौन्दर्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

सन्दर्भ सूची– 1. Gopalan,R,*History of Pallavas of Kanchi*,Madras,1928
2. Chelvar,Panmozhi,*The Glorious Temples of Kanchi*,Kanchipuram,1983
3. Krishna, Nanditha, *Kanchi - A Heritage of art and religion*,

कुशीनगर

डा0 सत्य प्रकाश श्रीवास्तव
असिस्टेन्टप्रोफेसर (संस्कृत)
सी0एम0पी0महाविद्यालय इलाहाबादविश्वविद्यालय

कुशीनगर महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण–स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। बुद्ध के जन्म के पूर्व से ही यह गणराज्य के रूप में विख्यात था प्राचीन गण राज्यों में पावा के मल्ल और कुशीनारा के मल्ल प्रसिद्ध थे, जिनकी स्थिति आस–पास ही थी। वर्तमान में दोनों स्थल आधुनिक एवं नव निर्मित जनपद कुशीनगर क्षेत्र में ही स्थित हैं। सुम. ंगलविलासिनी में पावा और कुशीनगर के बीच की दूरी तीन गव्यूत अर्थात् लगभग 18 कि0मी0 बतलायी गयी है। पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर इन दोनों नगरों की पहचान की जाचुकीहै।

कुशीनगर के ध्वंशावशेषों से जो मृण्मुद्रांक प्राप्त हुए हैं, उन पर ब्राह्मी लिपि में 'श्री महापरिनिर्वाण विहारीयार्य भिक्षुसंघस्य', 'श्री महापरिनिर्वाण विहारे भिक्षुसंघस्य' और महापरिनिर्वाण भिक्षुसंघस्य' लेख उत्कीर्ण हैं। इससे यह प्रभाणित हो जाता है कि यही महात्मा बुद्ध का महापरिनिर्वाण स्थल है। यहाँ पर महापरिनिर्वाण मुद्रा में महात्माबुद्ध की गुप्तकाल की एक विशाल प्रस्तर प्रतिमा भी प्राप्त हुई है, जिस पर तत्कालीन ब्राह्मी लिपि में एक लेख है, जो इस प्रकार है–

''देय धर्म्मोयं महाविहारस्वामिनो हरिबलस्य प्रतिमा चेयं घटितादिन्नेन माथुरेण''

इसलेख के अनुसार मूर्ति का प्रतिष्ठापक स्वामी हरिबल और शिल्पी मथुरा का दिन्न था। मथुरा से प्राप्त अन्य मूर्तियों पर भी शिल्पी का नाम 'दिन्न' उत्कीर्ण है। इससे अनुमानित होता है कि मथुरा की मूर्तियों और कुशीनगर की मूर्तिका निर्माता/शिल्पी एक हीव्यक्ति था। कुशीनगर की महापरिनिर्वाण वाली मूर्ति मथुरा से बहुत दूर स्थापित की गयी थी। अतः शिल्पी के नाम के साथ मथुरा का नाम भी अंकित कर दिया गया था, ताकि स्पष्ट हो सके कि इस मूर्ति का शिल्पी मथुरा का ही निवासी था।

ग-कसिया प्रतिमा-लेख

महापरिनिर्वाण–स्थल से कुछ ही दूरी पर माथाकुंवर मंदिर है, जिसमें पद्मासनस्थ बुद्ध की भूमि–स्पर्श मुद्रा मे कलचुरिकालीन एक प्रस्तर प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें बुद्ध के चतुर्दिक अन्य मूर्तियों का भी अंकन है। कला की दृष्टि से कलचुरि काल की यह एक बहुत ही सुन्दर बुद्ध–प्रतिमा है। उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र पर कलचुरियों का भी अधि ाकार था, जिन्हें ''सरयूपार के कलचुरि'' कहा जाता है। कुशीनगर से कलचुरिक. ालीन एक प्रस्तर अभिलेख भी पाया गया है जिस पर ''नमोरूद्राय'' के साथ ''नमोबुद्ध ाय'' भी उत्कीर्ण है। इस अभिलेख में शिव की स्तुति के बाद बौद्ध देवीतारा, बुद्ध एवं विष्णु की भी वन्दना की गयी है। जहाँ पर यह अभिलेख प्राप्त हुआ था, वहाँ पर बौद्ध बिहार के अवशेष विद्यमान हैं।संभवतः इन बिहारो का निर्माण कलचुरि काल में हुआ होगा, जिनके संदर्भ में यह प्रस्तर अभिलेख उत्कीर्ण किया गया था।

उल्लेखनीय है कि कुशीनगर में महात्माबुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ था। अतः यहीं पर उनका दाह–संस्कार भी किया गया था। उस स्थल पर बहुत बड़ा स्तूप आज भी विद्यमान है, जिसे 'रामभारटीला' कहा जाता है। यहाँ पर भी अनेक स्मारक बने थे। कुशीनगर के अवशेष विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं, जिनसे इस स्थल का महत्व का पता चलता हैं।

अयोध्या

डा0 ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव रजिस्ट्रीकरण अधिकारी (से0नि0), पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृति

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका। पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका।।

इसके अनुसार अयोध्या नगरी मोक्ष प्रदान करने वाली है। श्रीरामचन्द्र के माध्यम से तुलसी ने स्वयं रामचरितमानस में कहा है–

''जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। वेद पुरान विदित जग जाना।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानहिं कोउ कोऊ।।
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा।।''

धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अयोध्या ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में होने वाले महाकवि कालिदास ने रघुवंश,13,61–62 में अयोध्या को उत्तर कोसल की राजधानी बताया है। अयोध्या में रानोपाली मंदिर के गर्भगृह के प्रवेशद्वार पर ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण धनदेव अभिलेख सबसे प्राचीन है जो इस प्रकार है–

''कोसलाधिपेन द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकीपुत्रेण धन ..... धर्मराज्ञा पितुः फल्गुदेवस्य केतनं कारितं''

कालिदास एवं पतंजलि द्वारा उल्लिखित पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ का यह आभिलेखीय साक्ष्य है जिससे यह प्रमाणित होता है कि पुष्यमित्र के छठवीं पीढी में उत्पन्न धनदेव कोसल का शासक था। इस अभिलेख के अतिक्ति अयोध्या में शासन करने वाले राजाओं की जानकारी उनके द्वारा प्रचलित सिक्कों से भी होती है। इस क्रम में 'देव'नामान्त वाले शासकों में पोठदेव, मूलदेव, वायुदेव, धनदेव और विशाखदेव एवं फल्गुदेव नामक शासकों की जानकारी प्राप्त होती है। तदन्तर 'दत्त' नामान्त वाले शासकों में नरदत्त, ज्येष्ठदत्त, दृढदत्त, शिवदत्त के नाम ज्ञात थे। इसके अतिरिक्त सन्त कबीरनगर जनपद में स्थित कोपिया से रामदत्त नामक शासक का एक सिक्का मुझे मिला था। इनके अतिरिक्त अयोध्या से कुमुदसेन, अजवर्मन्, माधववर्मन्, संघमित्र, विजयमित्र, देवमित्र, सत्यमित्र और आयुमित्र नामक शासकों की जानकारी उनके सिक्कों से प्राप्त होती है।

इसी क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि राजघाट से कुछ मृण्मुद्रांक भी मिले हैं जो अयोध्या के शासकों से सम्बन्धित माने जाते हैं। इस सन्दर्भ में भवसेनपुत्रस्य विष्णुमित्रस्य, विष्णुमित्रपुत्रस्य संघमित्रस्य एवं विजयमित्रपुत्रस्य शिवमित्रस्य लेखयुक्त मुद्रांकों की चर्चा की जा सकती है जिसके आधार पर उन शासकों का सम्बन्ध और उनका क्रम भी निर्धारित किया जा सकता है।

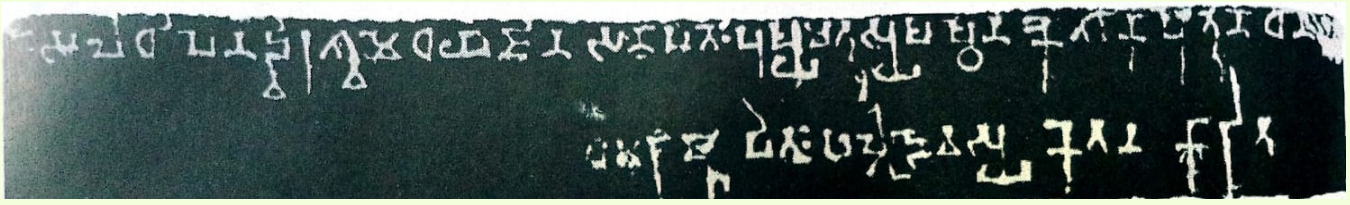

गत पृष्ठ से आगे कृमश .. **अयोध्या**

अयोध्या के सन्दर्भ में गहडवाल शासक चन्द्रदेव के वि. सं. 1150 अर्थात् 1093 ई. के चन्द्रावती ताम्रपत्रलेख की भी चर्चा की जा सकती है जिसमें कहा गया है कि उसने आश्विन मास की अमावस्या तिथि को पवित्र सूर्यग्रहण के पर्व पर सरयू और घाघरा के संगम में अयोध्या के स्वर्गद्वार नामक तीर्थ में स्नान करके ब्राह्मणों को दान दिया था।

अयोध्या में श्रीरामजन्मभूमि स्थल से **बारहवीं शताब्दी ई.** का बीस पंक्तियों में उत्कीर्ण प्रस्तर अभिलेख भी मिला है जिसकी पन्द्रहवीं पंक्ति में **"व्यूहैर्विष्णुहरेहिरण्यकलशश्रीसुन्दरमंदिरं"** उत्कीर्ण है तथा सत्रहवीं पंक्ति में **"साकेतमंडलमश्चण्डकारिकूपवापीप्रतिश्रयंतडागसहस्रमिथं"** भी अंकित है। इसी स्थल पर वर्तमान में श्रीराममंदिर का निर्माण हो रहा है।

इसप्रकार अयोध्या धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थल है।

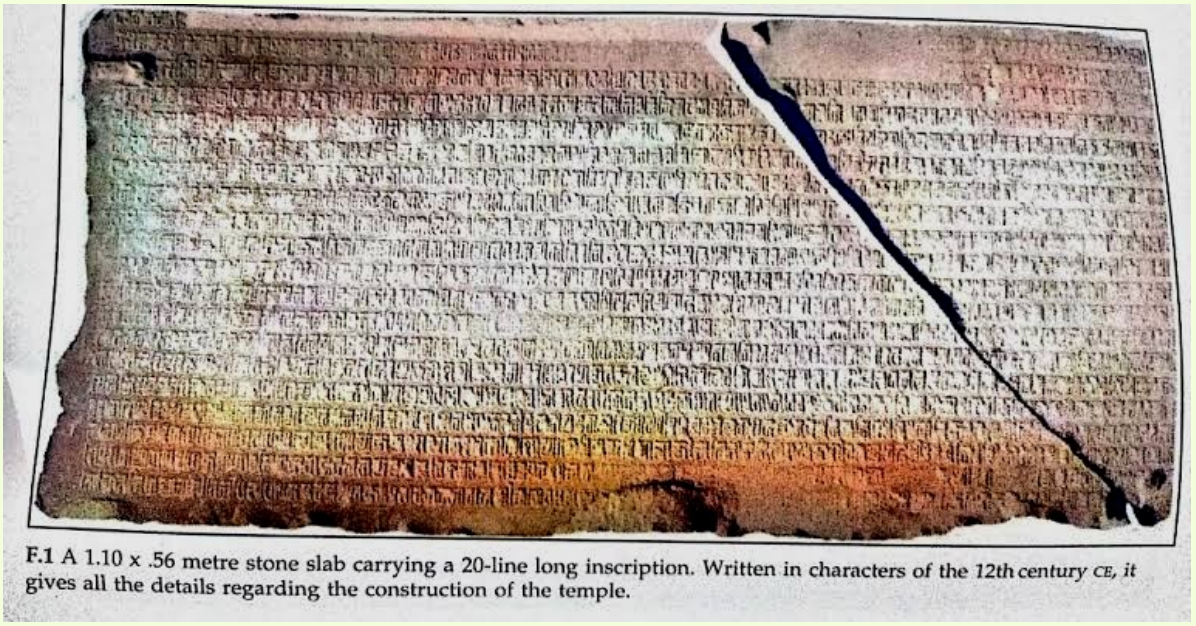

F.1 A 1.10 x .56 metre stone slab carrying a 20-line long inscription. Written in characters of the 12th century CE, it gives all the details regarding the construction of the temple.

अग्रोहा

डा मीनू अग्रवाल, प्राचीन इतिहास विभाग, एस.एस.खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज

अग्रोहा आधुनिक हरियाणा के हिसार जिले में स्थित है। इसका प्राचीन नाम 'अग्रोतक' ज्ञात होता है। यह आग्रेय जनपद की राजधानी था। अकबर के राज्यकाल सुप्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार पंडृ राजमल्ल लिखित **जम्बूस्वामी चरित** नामक संस्कृत ग्रन्थ में लेखक ने अपने संरक्षक को ''अग्रोतक वंश के गर्ग गोत्र' का बताया है। आधुनिक कौशाम्बी –प्राचीन कोसम – के निकट **पभोसा जैन धर्मशाला** में वि.सं. 1881 के लेख में अग्रोतक वंश के गोयल गोत्र का परिचय दिया है। जिस प्रकार *प्रथूदक* से *'पेहोवा'* नाम प्रसिद्ध हो गया उसी प्रकार *अग्रोतक* से *'अग्रोहा'* प्रसिद्ध हो गया हो। दिल्ली से पांच मील दक्षिण स्थित सारबन नामक ग्राम से मुहम्मद बिन तुगलक के समय के – संवत 1385 के एक लेख में **अग्रोतक निवासी वणिक** का उल्लेख है इस लेख में दिल्ली को *'ढिल्लिकाख्या पुरी'* और 'हरियाना' का उल्लेख भी है।'

अग्रोहा फिरोज शाह तुगलक के काल तक वाणिज्य और राजनीति का महत्वपूर्ण केन्द्र बना रहा क्योंकि यह तक्षशिला और मथुरा के बीच प्राचीन व्यापारिक मार्ग पर स्थित था।

मौर्यों के पतन के पश्चात, हरियाणा के अग्रोहा क्षेत्र में अग्र गणराज्य के लोगों ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था। अग्रोहा अग्रगण का मुख्य नगर अथवा राजधानी था। यहॉ से प्राप्त सिक्कों पर ***'अगोदके च अगाच्च ''***लेख मिला है जो इसके प्राचीन नाम **अग्रोतक** का संकेतक माना जाता है। बौद्ध ग्रंथ "महामयुरी" में इसका प्राकृत भाषा में 'अगोदक' नाम मिलता है। कुछ स्थानों पर *अग्रत्य* व *अगाच* शब्दों का भी इसके लिए प्रयोग हुआ है। पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में यह गण विद्यमान था।सिक्कों में अग्रों के लिए *अग्रेय अग्ग* आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। बौधायन के श्रोत सूत्र तथा पतंजली के महाभाष्य में भी इस गण का उल्लेख हुआ है। महाभारत में अन्य गणराज्यों के साथ 'अग्रगण' का उल्लेख मिलता है।

पंजाब में अनेक किंवदन्तियॉ राजा रिसालू के नाम से प्रसिद्ध हैं जिनका सम्बन्ध अग्रोहा से बताया जाता है। कहा जाता है कि अग्रोहा में भयानक आग के कारण नगर नष्ट हो गया था और केवल राख का ढेर रह गया था।

सन्दर्भ पुस्तके –

1.Srivastava, H.L., *Excavation of Agroha, Memoirs of the Archaeological Survey of India,* No. 61, New Delhi, 1999

2.Gupt, P.L., *Agrawal Jati Ka Vikas*, Kashi, 1942

3.Vidyalankar, Satyaketu, *AgraAwal Jati Ka Pracheen Itihas*,

4.Agrawal, Swarajmani, *Agra, Agroha Aur Agrawal*

Photo of coin Curtesy :

https://www.marudhararts.com/printed-auction/auction-no-29/lot-no-14/coins-of-india/ancient-india/tribal-coins/haryana-region/extremely-rare-copper-coin-of-agroha-janapada-of-punjab-haryana-region-.html

महोबा

डॉ. सुलभ श्रीवास्तव
प्रवक्ता, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान
संत रविदास नगर (भदोही), उत्तर प्रदेश

महोबा उत्तर प्रदेश में स्थित प्राचीन 'महोत्सवनगर' है जो चंदेल शासकों की राजधानी थी। पूर्व में यह बुंदेल खंड में हमीरपुर जनपद के अंतर्गत था, किंतु इसके ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व को देखते हुए प्रशासनिक दृष्टि से अब इसे हमीरपुर से अलग करके एक स्वतंत्र जिला बना दिया गया है। पृथ्वीराज रासो में वर्णित आल्हा–ऊदल यहीं के निवासी बताए जाते हैं, जिनकी वीरता सर्व प्रसिद्ध है। परंपरानुसार आल्हा अभी भी जीवित बताया जाता है जो प्रतिदिन मैहर स्थित मां शारदा देवी के मंदिर में पूजा करता है। महोबा में आल्हा–ऊदल के नाम से दो चौक हैं जहॉ पर उनकी मूर्तियां लगाई गई है, जिनको देखकर लोग गौरवान्वित होते हैं।

प्रारंभिक काल में चंदेलों की प्राशासनिक राजधानी महोबा ही थी, किंतु बाद में वह कालंजर में स्थानांतरित हो गयी थी। चंदेलों की सांस्कृतिक राजधानी खजुराहो थी जहॉ पर अनेक विशाल एवं महत्वपूर्ण मंदिरों का निर्माण किया गया था किंतु महोबा में भी विशिष्ट प्रकार के मंदिर हैं और दुर्लभ प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। महोबा में गोखर पहाड़; गोरख गिरि, पर **गजासुर वध प्रतिमा** ;शिव की विशाल गजान्तक प्रतिमा, शिला काटकर बनायी गयी है, जो अत्यंत विशाल एवं आकर्षक है। महोबा में ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध प्रतिमाएं भी प्राप्त हुई हैं। यहां से प्राप्त मानवाकार गरुड़ पर आसीन लक्ष्मी नारायण की प्रस्तर प्रतिमा कला एवं सौंदर्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है जो वर्तमान में राजकीय संग्रहालय झांसी में प्रदर्शित है। इसका एक्सेसन न. 87.112 है। इसी संग्रहालय में चतुर्भुजी विष्णु की स्थानक मुद्रा में प्रतिमा ;87.114, तथा पंचाश्व रथ पर आरूढ़ सूर्य की स्थानक प्रतिमा ;87.113, भी उल्लेखनीय है जो महोबा से ही प्राप्त हुई है।

महोबा में सूर्य की प्रतिमा के अतिरिक्त रहेलिया के सूर्य मंदिर की सूर्य प्रतिमा भी महत्वपूर्ण थी जो अब अपने स्थान पर नहीं है। शायद वह चोरी हो गई है। महोबा में मदन सागर के मध्य में ''ककरामठ'' नामक एक प्रसिद्ध शिव मंदिर है जो स्थापत्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है इसको देखकर कलचुरि शासक पृथ्वीदेव द्वितीयकालीन कोनी प्रस्तर लेख की याद आ जाती है, जिसमें वर्णित है कि उसके सर्वाधिकारिन पुरुषोत्तम द्वारा रत्नपुर में गहरा और निर्मल जल वाला तालाब तथा पंचायतन शैली में शिव का सुंदर मंदिर बनवाया गया था। चतुर्दिक जल से घिरे होने के कारण उस शिव मंदिर को द्वारिकापुरी की भॉति सुशोभित बताया गया है।

महोबा में जैन तीर्थंकर ऋषभनाथ, नेमिनाथ, पद्मनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर की भी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं, जो वर्तमान में राजकीय संग्रहालय झांसी में सुरक्षित हैं। इस संग्रहालय में प्रदर्शित ऋषभनाथ की एक प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिस पर किसी वस्तु ;कंकड़ आदि, से स्पर्श करने से धातु जैसी ध्वनि उत्पन्न होती है। इसी क्रम में महोबा से प्राप्त बौद्ध प्रतिमाओं में सिंहनाद अवलोकितेश्वर, पद्मपाणि अवलोकितेश्वर और बौद्ध देवी तारा की प्रतिमाएँ उल्लेखनीय है जो कला और विषय की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक, पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महोबा एक महत्वपूर्ण स्थल हैं, जहॉ के शासकों ने खजुराहो जैसा उल्लेखनीय एवं स्मरणीय स्मारक हमारे देश को प्रदान किया है।

सारनाथ

अवधेश कुमार मौर्य, शोध छात्र,
एस0एस0 खन्ना महिला महाविद्यालय,, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

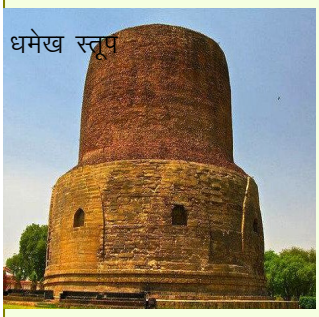
धमेख स्तूप

सारनाथ बौद्ध धर्मावलम्बियों का एक पवित्र स्थल है, जहाँ महात्मा बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया और बौद्ध धर्म तथा संघ की स्थापना की थी। बौद्ध साहित्य में इसे ऋषिपत्तन अथवा मृगदाव कहा गया है। इसके नामकरण की कथा हमें पालि ग्रंथ महावस्तु में मिलती है। मध्य कालीन लेखों में इसे धर्मचक्र प्रवर्तन बिहार के नाम से सम्बोधित किया गया है, जबकि वर्तमान सारनाथ नाम सारंग नाथ महादेव के नाम पर पड़ा है। यद्यपि सारनाथ का उल्लेख साहित्यक ग्रंथों में ऋषिपत्तन या मृगदाव के नाम से मिलता है, किन्तु इसकी वर्तमान पहचान का श्रेय पुरातात्विक उत्खनन को जाता है। सन् 1794ई0 का साल था, जब काशी प्रांत के राजा चेतसिंह के दीवान बाबू जगत सिंह ने एक नया मोहल्ला बसाने के लिए वरूणा के उत्तर में स्थित सारनाथ गाँव से ईंटो और पत्थरों का ढेर प्राप्त किया। जब इसकी सूचना अंग्रेज अधिकारियों को मिली तो उन्होंने यहॉ से ईंट निकालने पर प्रतिबंध लगा दिया। इस प्रकार यह पुरास्थल प्रकाश में आया।

सारनाथ में पहला उत्खनन कार्य 1815ई0 में कर्नल कॉलिन मैकेंजी के द्वारा कराया गया किन्तु विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। यहॉ पर विस्तृत उत्खनन का कार्य 1834–36ई0 में अलेक्जेण्डर कनिंघम के द्वारा कराया गया जिसमें मुख्य रुप से धर्मरजिका स्तूप, धमेख स्तूप तथा चौखण्डी आदि प्रकाश में आये। आगे चलकर यहॉ पर मेजर मारखम किट्टो, बी0बी0 चक्रवर्ती, जॉन मार्शल तथा दयाराम साहनी जैसे पुरातत्वविदों ने उत्खनन कार्य करवाया। साहित्य और पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह प्रमाणित किया जा सकता है कि सारनाथ में मौर्यकाल से लेकर पूर्व मध्यकाल तक निरंतर निर्माण और मरम्मत का कार्य होता रहा।

मौर्य काल में सम्राट अशोक ने इस पवित्र भूमि पर स्तूप, बौद्ध बिहार तथा एकाश्मक स्तम्भ की स्थापना की थी। इस स्तम्भ के शीर्ष पर चार शेर पीठ सटाकर बैठे हैं। यह शीर्ष आकृति मौर्य कालीन कला और पालिश का बेहतरीन उदाहरण है। जिसे वर्तमान में भारत सरकार का राजचिन्ह स्वीकार किया गया है। इस स्तम्भ लेख में अशोक ने बौद्ध संघ में फूट डालने वालों की संघ से निष्कासित करने का निर्देश दिया था। अशोक द्वारा बनवाये गये धर्मरजिका स्तूप का व्यास लगभग 13मी0 तथा ऊँ0 30 मी0 था। जिसे बाद में कुषाण और गुप्त शासन काल में विस्तृत किया गया ।

मौर्यों के बाद कुषाणों ने इस क्षेत्र पर शासन किया, जिसका प्रमाण हमें कुषाण शासक कनिष्क के राज्याभिषेक के तीसरे वर्ष के अभिलेख से मिलता है। कुषाण काल में ही लाल बलुआ पत्थर की बनी छत्र युक्त बोधिसत्व की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है, जो वर्तमान में संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

गुप्त शासक यद्यपि वैष्णव धर्मावलम्बी थे फिर भी उन्होंने सभी धर्म के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई। किसी प्रतापी गुप्त शासक द्वारा यहाँ पर किसी निर्माण की सूचना प्राप्त नहीं होती, फिर भी लोगों और संगठनों के प्रयास से यहाँ कई इमारतों और मूर्तियों की स्थापना की गई। इसी काल में विशाल धमेख स्तूप का निर्माण हुआ जिसका व्यास 28 मी0 तथा कुल ऊँ0 42 मी0 है। गुप्त काल में ही मूर्ति कला की एक नवीन शैली का विकास हुआ जिसे सारनाथ शैली कहा जाता है। गुप्त शासन काल में ही चीनी यात्री फाहयान (399–412ई0) भारत आया था। अपनी इस यात्रा में वह ऋषिपत्तन का दौरा करता है और यहाँ के स्तूपों, बिहारों तथा अन्य कलाकृतियों का उल्लेख अपनी पुस्तक फो–क्यू–की में किया है।

गुप्तों के बाद पुष्यभूति वंश के शासक हर्षवर्धन के समय भी सारनाथ का वैभव और प्रतिष्ठा कायम रही। चीनी यात्री ह्वेनसांग (629–647ई0) ने अपनी पुस्तक सी–यू–की में यहाँ 1500 बौद्ध भिक्षुओं के रहने का उल्लेख किया है। ह्वेनसांग के अनुसार यहाँ बने मुख्य मन्दिर की ऊँ0 लगभग 61 मी0 थी।

हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद उत्तर भारत कई छोटे–छोटे राज्यों में बँट गया। इन छोटे–छोटे राज्यों पर अलग–अलग समय पर अलग–अलग राजवंशों ने शासन किया। इस अवधि में सारनाथ चन्देलों, पालों, गुर्जर प्रतिहारों तथा गहडवालों के अधीन रहा। पालों के समय की अनेक इमारतें, मूर्तियाँ तथा अभिलेख सारनाथ से प्राप्त हुई है। सारनाथ में अंतिम बड़ा निर्माण कार्य गहडवाल नरेश गोविन्दचन्द्र की पत्नी कुमार देवी द्वारा कराया गया। यहाँ से कुमार देवी का प्रशस्ति लेख भी प्राप्त हुआ है। यद्यपि गहड़वाल नरेश हिन्दू धर्मावलम्बी थे फिर भी महारानी कुमार देवी ने धर्मचक्र जिन बिहार का निर्माण कराकर बौद्ध भिक्षुओं को दान दिया था।

वर्तमान में सारनाथ बौद्ध पवित्र स्थलों में से एक है जो धर्म के साथ–साथ इतिहास, कला, संस्कृति तथा पर्यटन में रूचि रखने वाले लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है। यहाँ पर मुख्य रुप से धर्मरजिका स्तूप, धमेख स्तूप, धर्मचक्र जिन बिहार, संग्रहालय,जैन मन्दिर चौखण्डी स्तूप, सारंगनाथ महादेव मन्दिर तथा कई देशों द्वारा बनवाई गयी इमारतें तथा विशालकाय मूर्तियाँ आकर्षक का केन्द्र हैं।

सन्दर्भ पुस्तकेः वृंदावन भटटाचार्य कृत *सारनाथ का इतिहास,*

B.R.Mani—*Sarnath : Archaeology: Art & Architecture*, ASI, New Delhi,2012

सारनाथ

मोनिका निषाद, शोध छात्रा,
एस0एस0 खन्ना महिला महाविद्यालय,, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

सारनाथ बौद्धों का एक अति पवित्र स्थान है। इस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर इस्वी सन् की बारहवीं शताब्दी तक सारनाथ बौद्ध धर्म का एक विशिष्ट केंद्र रहा। भगवान बुद्ध ने यहीं से श्रेष्ठ धर्म का प्रचार किया था, इसी कारण बौद्धों के चार महास्थानों में इसे भी स्थान प्राप्त है। सारनाथ का प्राचीनतम उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में ऋषिपतन या मृगदाव के नाम से ज्ञात होता है। जो कि काशी के लगभग 5 मील उत्तर की ओर स्थित है। चीनी यात्री फाहियान ने ऋषिपतन का अर्थ ऋषि का पतन बतलाया है। कनिंघम का मानना है कि आधुनिक नाम सारनाथ की उत्पत्ति सारङ्गनाथ मृगों के नाथ यानी गौतम बुद्ध से हुइ है। तथा शिलालेखों में इसका नाम धर्मचक्र या सङधर्मचक्रप्रवर्तन विहार ही मिलता है। बुद्ध के प्रथम उपदेश के समय से लगभग 300 वर्ष बाद तक के सारनाथ के इतिहास का कुछ भी पता नही है।एक समय यहां चीन, जापान, जावा, ब्रह्मदेश, लंका से यात्री यहां प्रण्यभूमि के दर्शन के लिए आते थे। इसी सारनाथ से महाराज अशोक की राजाज्ञा निकली थी अशोक के धर्मानुराग के कारण सारनाथ बौद्धधर्मावलम्बियों का मुख्य केंद्र बन गया। सारनाथ से अब तक मौर्यकाल के चार स्मारक मिले है। एक है अशोकस्तम्भ, दूसरा धर्मराजिका स्तूप, तीसरा है पत्थर की चहारदीवारी तथा एक गोलमंदिर जिसकी बनावट कार्ले चैत्य की जैसी है। भगवान बुद्ध गया में ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात इसी सारनाथ में आए और यहीं पर अपना प्रथम उपदेश दिया जिसे धर्मचक्रप्रवर्तन कहा जाता है। यहीं पर साहूकार के पुत्र यस्स तथा उसके पिता को भी धर्मोपदेश देकर बौद्ध बनाया। उदपानदूसक नामक जातक का वर्णन भी यही किया था। इन्हीं कारणों से सारनाथ का बुद्ध से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मौर्यों के बाद शुंग राजाओं की कोइ इमारत यहां नही मिली। परन्तु हरग्रीव्स को यहां से खुदाइ में 300 नमूने मिले जिससे सारनाथ की महत्ता शुंगकाल में भी सूचित होती है। धर्मराजिका स्तूप से एक विशालकाय बोधिसत्व प्रतिमा प्राप्त हुइ है जिसपर सम्वत् 81 अंकित हैजिससे यह सूचना मिलती है कि सारनाथ कुषाण शासक कनिष्क के अधीन था। गुप्तकाल सारनाथ का गौरव काल था यहां से गुप्तयुगीन चार मूर्तियां प्राप्त हुइ जिनमें बी. 175 को सम्राट कुमारगुप्त प्रथम 413–455 इस्वी सन् ने चढाइ थी और बाकी तीन भिक्षु अभयमित्र द्वारा कुमारगुप्त द्वितीय 472–477 इस्वी सम्वत् और बुद्ध गुप्त 478–500 इस्वी सम्वत् के राज्यकाल में प्रतिष्ठापित की गइ थी।सारनाथ को हूणों के आक्रमण को झेलना पडा। मौखरी और वर्धन के समय सारनाथ अपनी परकाष्ठा पर था जिसकी पुष्टि हुएनसांग के भ्रमण वृतान्त से होती है जिसमें उसने सारनाथ को कन्नौज के अधीन बताया। इसके पश्चात आधी शताब्दी तक सारनाथ का इतिहास अंधकारपूर्ण रहता है अतः एक बार फिर पाल वंश के शासनकाल में इसकी महत्ता पुनः बढती है। पाल शासक महीपाल 992–1040 इस्वी सन् के शासनकाल में स्थिरपाल और वसंतपाल नाम के दो भाइयों ने धर्मराजिका स्तूप का जीर्णोद्धार करवाया। तथा यहां से भगवान बुद्ध की चरण चौकी पर पर एक लेख प्राप्त हुआा है जिस पर सम्वत 1083 अर्थात इस्वी सन् 1026 लिखा हुआ है जिससे यह सूचित होता है कि 1026 में सारनाथ पाल राज्य की सीमा में था। 11वीं शदी में यह कलचुरि साम्राज्य के अधीन हो गया। सबसे अंत में सारनाथ पर कन्नौज के गहडवालों का अधिकार था।

सन्दर्भः 1. साहनीः गाइड टू बुद्धिस्ट रूइन्स ऐट सारनाथ; पांचवां संस्करण; पृ0 1।
2. साहनीः दया राम, कैटलॉग ऑफ आर्कियोलॉजी एट सारनाथ, कलकत्ता, 1914।
3. नागर, श्री मदनमोहन, सारनाथ का संक्षिप्त परिचय, मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन्स, देहली, 1941।
4. भट्टार्याय, श्री वृन्दावन, सारनाथ का इतिहास; प्रथम संस्करण; ज्ञानमण्डल कार्यालय काशी ।
फोटो स्त्रोतः गूगल के माध्यम से।

एहोल–बागलाकोट कर्नाटक

प्रमोद कुमार रजक, शोध छात्र, एस0एस0 खन्ना महिला महाविद्यालय,प्रयागराज

एहोल कर्नाटक राज्य के बागलाकोट जिले में स्थित है। यह मालप्रभा नदी के किनारे फैला हुआ एक प्रमुख पुरातात्विक स्थल है। जिसमें एक सौ बीस से अधिक पत्थर और गुफा मंदिर है। एहोल को आइहोल के नाम से भी जाना जाता है। दक्षिण भारत में मंदिर स्थापत्य कला का प्रारम्भ–चालुक्य वंश के शासकों ने यहीं से किया, जिनकी राजधानी वातापी (बादामी) थी। उनके शासन काल के मंदिरों में नागर तथा द्रविड़ शैलियों का मिश्रण मिलता है। इसलिए इन्हें चालुक्य स्थापत्य कला का जन्मदाता माना जा सकता है।

एहोल के चालुक्यकालिन तीन मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके नाम लाढ़खान मन्दिर, दुर्गा मन्दिर तथा हच्चीमल्ली गुड्डी मन्दिर है। लाढ़खान मन्दिर 450 ई0 में निर्मित माना जाता है। यह वर्गाकार है। नीची तथा सपाट छत वाले इस वर्गाकार भवन की प्रत्येक दीवार 50 फुट लम्बी है। इसे सूर्य मंदिर के नाम से भी जाना जाता है। इसमें बनाये गये आलो में अर्धनारीश्वर, शिव, सूर्य, स्थानक, चर्तुभुजी विष्णु की मूर्तियां उकेरी गयी हैं। मन्दिर के बीच में नन्दी की विशाल मूर्ति स्थापित है। यह मन्दिर अपनी विशालता, रचना की सरलता, नक्शे और वास्तुकला के विवरण आदि से एक विहार जैसा दिखता है।

दुर्गा मन्दिर संभवतः छठी सदी का है। यह मन्दिर बौद्ध चैत्य को ब्राह्मण धर्म के मन्दिर के रूप में उपयोग में लाने का एक प्रयोग है। इस मन्दिर का ढाँचा अर्द्धवृताकार है। इस मन्दिर का निर्माण एक ऊँचे चबुतरे पर किया गया है। मन्दिर के बाहरी स्तम्भों में अनेक पर देवमूर्तियां बनी हुयी हैं। इसमें नागर शैली के शिखर तथा द्राविड़ वातु के विविध तत्वों से बना यह मन्दिर, उत्तर तथा दक्षिण की वास्तुकला के समन्वय का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है।

हच्चीमल्ली गुड्डी मन्दिर बहुत कुछ दुर्गा मन्दिर से मिलता जुलता है। यद्यपि यह उससे बनावट में अधिक सरल तथा आकार में छोटा है। भीतरी कक्ष तथा मुख्य हॉल के बीच अन्तराल इसकी एक नई विशेषता है।

एहोल के सबसे बाद का मन्दिर 'मेगुती जैन मन्दिर' है जिसे रविकीर्ति ने 634 ई0 में बनवाया था। यह द्रविड़ शैली का मन्दिर है। इसके गर्भगृह के भीतर की मूतियां नष्ट हो चुकी हैं। इसकी रचना अधूरी रह गयी हैं।

Durga Mandir, Aihol,

एहोल से चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय का 634 ई0 का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह प्रशस्ति के रूप में है और संस्कृत काव्य परंपरा में लिखा गया है। इसका रचयिता जैन कवि रविकीर्ति था। इस अभिलेख में पुलकेशिन द्वितीय के हाथों हर्षवर्धन की पराजय का भी वर्णन है।

सन्दर्भ ग्रंथ

के0सी0 श्रीवास्तव : प्राचीन भारतीय कला तथा स्थापत्य
डॉ0 हुकुम चन्द्र जैन : भारतीय ऐतिहासिक स्थल कोष
डॉ0 आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव : भारतीय मूर्तिकला एवं वास्तुकला
उपिन्दर सिंह : अन्सिऐट इडिया कल्चर ऑफ कन्ट्राडिक्शनस
द्विजेन्द्र नारायण झा कृष्णमोहन श्रीमाली : प्राचीन भारत का इतिहास

वैशाली

आशुतोष द्विवेदी, शोध छात्र,
एस0एस0 खन्ना महिला महाविद्यालय,, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

भारत के बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले मे स्थित बसाढ़ (वैशाली) को एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक मुख्यालय की संज्ञा दी गई है। बुद्ध काल मे यहीं लिच्छवियों का प्रसिद्ध गणराज्य था। यह गणराज्यों मे सबसे बड़ा और सबसे शक्तिशाली गणराज्य था।

यह जैन एवं बौद्ध दोनों धर्मों का केन्द्र था। गौतम बुद्ध को यह नगर बहुत प्रिय था। बुद्ध स्वयं यहाँ 3 बार गये थे। इसके निकट स्थित रामकुण्ड को कनिंघम महोदय ने 'मर्कट हद' माना है, जिसे बन्दरो ने महात्मा बुद्ध के लिये खोदा था। महापरिनिर्वाण सूत्र मे वैशाली के अनेक चैत्यो का विवरण मिलता है। बुद्ध ने एक बार राजगृह मे बताया था कि उन्होने गणतंत्रों के लिये वैशाली के सारन्दद चैत्य मे सात अपरिहाणीय धर्मो का उपदेश दिया था। महावस्तु के अनुसार, वैशाली मे 168,000 राजाओ के निवास करने का उल्लेख प्राप्त होता है।

ह्वेनसांग ने **वैशाली की द्वितीय बौद्ध संगीति** का भी उल्लेख किया है जिसमे 700 भिक्षुओ ने भाग लिया था। वैशाली के समीप ही बखीरा नामक स्थान है जहाँ से **अशोक का सिंह शीर्ष स्तम्भ** लेख मिता है जिसे बसाढ़ कहा जाता था। कोलहुआ नामक स्थान भी यही पर स्थित था। खोरन पोखर (तालाब) लिच्छवियो के राज्याभिषेक से सम्बन्धित था। यहाँ से कुषाण कालीन सिक्के सथा लगभग 2000 मुहरे मिलते है। जिनमे अधिकांशतः शि. ल्पियों, व्यापारियों, सौदागरो एवं उनके निगमो की है।

वैशाली को चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के जन्म स्थल का भी गौरव प्राप्त है। जैन धर्मावलम्बियो के लिये वैशाली काफी महत्वपूर्ण है। यही पर 599 ई0पू0 मे जैन धर्म के **24वें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म कुंडलपुर** (कुण्डग्राम) मे हुआ था।

विश्व को सर्वप्रथम गणतंत्र का ज्ञान कराने वाला स्थान वैशाली ही है। वज्जियों तथा लिच्छवियों के संघ (अष्टकुल) द्वारा गणतांत्रिक शासन व्यवस्था की शुरूआत की गयी थी। लगभग छठी शताब्दी ई0पू0 मे यहाँ के शासक जनता के प्रतिनिधियो द्वारा चुना जाने लगे और गणतंत्र की स्थापना हुई।

वैशाली की महत्ता एवं प्राचीनता हिंदी कवि रामधारी सिंह दिनकर जी की इन पंक्तियो में अभिव्यक्त हुई है।

"वैशाली जन का प्रतिपालक, विश्व का आदि विधाता ।
जिसे ढूँढता विश्व आज, उस प्रजातन्त्र की माता।
रूको एक क्षण पथिक, इस मिटटी पर शीश नवाओ,
राज सिद्धियो की समाधि पर फूल चढाओं।।"

सन्दर्भ – वैशाली के प्राचीन अवशेष, https://asi.nic.in/HI/ancient-remains-at-vaishali/

पाटिलपुत्र

नीरज कुमार मिश्र
शोध छात्र, एस0एस0 खन्ना महिला महाविद्यालय,प्रयागराज

पाटिलपुत्र वर्तमान बिहार राज्य की राजधानी पटना नामक शहर के नाम से विख्यात है, जिसका अक्षांशीय विस्तार–25 36′45′′ स` 25 61′25′′ तक तथा देशान्तरीय विस्तार–85 07′42′′ से 85 12′83′′ के बीच विस्तृत क्षेत्रफल में स्थित था। पाटिलपुत्र का प्राचीन नाम– पाटिलपुत्र, कुसुमपुर, पुष्पपुरी आ"र अजिमाबाद था। यह शहर प्राचीन काल से अत्यंत सम्रद्ध विरासत का केन्द्र था। यह नगर गंगा नदी के दक्षिणी तट पर बसा होने तथा सोन नदी के कारण सम्पन्नता को प्राप्त करने वाला एक महत्वपूर्ण सम्रद्ध नगर था। इस नगर का संस्थापक हर्यक वंशी अजातशत्रु का पुत्र उदयिन/उदयभद्र (460–444ई0पू0) था। (हेमचन्द्र की परिशिष्टपर्वन के अनुसार) बुद्धकाल मे ं पाटिलपुत्र से अनेक व्यापारिक मार्ग जाते थ`, जिस कारण पाली साहित्य में पाटिलपुत्र को पुटभेदन (वाणिज्य केन्द्र) कहा जाता था। आचार्य चाणक्य ने इस नगर का` ''नदीसंगम'' तथा महर्षि पतंजलि ने अनुशोतम पाटिलपुत्र कहा। कुम्रहार और बुलंदीबाग इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प है, जिनका उत्खनन डी0बी0स्पूनर महोदय (1912–16) ने किया। कुम्रहार से खुदाई करके विशाल मौर्य राजप्रसाद के अवशेष तथा एक विलुप्त दीवार का साक्ष्य प्राप्त किया है। पाटिलपुत्र की महत्ता को सर्वप्रथम हर्यकवंशी शासक अजातशत्रु ने समझा और पाटिलग्राम नामक एक दुर्ग का निर्माण करवाया और इस दुर्ग (फाटक) का उद्घाटन महात्मा बुद्ध से करवाया। बुद्ध ने पाटिल पुत्र के विषय मे भविष्यवाणी की– ''कि यह एक महानगर (अग्गनगर) बनेगा, परन्तु इस पर सदैव आग,पानी एवं आन्तरिक कलह का खतरा बना रह`गा''। उदयन ने ही पाटिलपुत्र का नाम कुसुमपुर रखा। उस समय पा. टिलपुत्र शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र था। वर्ष (पाणिनी के गुरू) उपवर्ष, पाणिनी, पिंगल और व्याडि आदि महान विभूतियों की शिक्षा–दीक्षा इसी नगर के विधालयों में सम्पन्न हुई। मेगस्थनीज और एरियन के अनुसार पालिब्रोथा (पाटिलपुत्र) प्रशियनां क्षेत्र में स्थित एक बडा सुन्दर शहर है। यह चारो ओर से एक विशाल दीवार से घिरा है इसमें 570 मीनारें (टावर) और 64 दुर्गद्वार है। राजा का महल काष्ठ (लकडी) निर्मित है। मेगस्थनीज के अनुसार पाटिलपुत्र का विस्तार 80 स्टेडिया (9.33 मील/15 किमी0 लम्बा) आ"र 15 स्टेडिया (1.75मील/1.5 किमी0) चौडा था। नगर के चारो ओर एक चौडी खाई का सा क्ष्य भी प्राप्त हा`ता था। पाटिलपुत्र के विशाल महलों की तुलना एकबेतना और सूसा के महलों से की जाती है। सम्राट अशोक के समय यहा बौद्ध धर्म की तीसरी बौद्ध समिति का आयोजन अशोकाराम विहार में किया गया। जिसकी अध्यक्षता मोगलिपुत्र तिष्य ने की थी। अशोक ने यहॉ कई स्तूप और विहारों का निर्माण करवाया था। शुंगों के समय भी पाटिलपुत्र साम्राज्य की राजधानी के रूप में विराजमान रहा। हालाकि भवनों के आक्रमण से पाटिलपुत्र का कुछ ह्रास हुआ जिसका उल्लेख महर्षि पतंजलि करते है। गुप्त काल तक पाटिलपुत्र अपनी पराकाष्ठा पर था। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समय तो साहित्य के केन्द्र के रूप में भी यह अपनी महत्ता का परिचायक था। ह्वेनसांग के समय यह नगर उजड़ चुका था। अलेक्जेंडर कनिंघम के अनुसार इस नगर के पतन का कारण गंगा नदी की बाढ़ को माना जाता है। चीनी तथा ग्रन्थ. ों में भी पाटिलपुत्र के पतन का कारण बाढ को ही माना जाता गया है। सुप्रसिद्ध गणितज्ञ एवं ज्योतिष आर्यभट्ट का निवास स्थान भी पाटिलपुत्र था। गुप्तकाल तक पाटिलपुत्र उत्तरापथ का व्यापारिक मार्ग से संबद्ध था। गुप्तों के पतन के बाद पाटिलपुत्र नगर का वैभव घटने लगा। चीनी यात्री फाह्यान ने पाटिलपुत्र की प्रशंसा करते हुये बताता है कि यह मध्यदेश का सबसे बड़ा नगर था। जहॉ के लोग सुखी व सम्रद्ध थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के राजप्रसाद का वर्णन करते हुए लि खा है कि इसका निर्माण देवताओं द्वारा किया गया है। 195 1955–56 ई0 में पटना विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के प्रोफेसर बी.पी. सिंध के निर्देशन में पटना शहर के चार विभिन्न स्थानों पर उत्खनन कराया और तीन सांस्कृतिक कालों की जानकारी मिलती ह"। (01) प्रथम सांस्कृ तिक काल (600ई0पू0–150ई0पू0) (02) द्वितीय सांस्कृतिक काल (150ई0पू0–500ई0पू0) (03) तृतीय सांस्कतिक काल (700ई0पू0 व उसके बाद)

प्रथम सांस्कृतिक काल से प्राप्त प्राचीन वास्तुकला पर प्रकाश डालते है तो उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि काष्ठकला पर पाटिलपुत्र नगर की निर्माण शैली में दिखाई पडती है। द्वितीय सांस्कृतिक काल में पाटिलपुत्र में एक संपन्न राजधानी के रूप में प्राचीन भारतीय इतिहास का सर्वशक्तिशाली केन्द्र बिन्दु क` रूप में विधमान था। इस काल खण्ड में शुंगों के बाद गुप्तों का वर्चस्व स्थापित होता है। गुप्त काल में तो पाटिलपुत्र व्यापार, सांस्कृतिक, शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र था। गुप्तों के पतन के बाद पाटिलपुत्र का भी पतन दृष्टिगत होता है। उसका वैभवशाली इतिहास कुछ ध ूमिल होता है। निष्कषर्तः इस प्रकार पाटिलपुत्र आज पटना के रूप में भारत का सूतीवस्त्र केन्द्र क` रूप मं` प्रसिद्ध ह"। सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1.परिशिष्ट पर्वन– हेमचन्द्र। 2. प्राचीन भारत का इतिहास–प्रो0 के0सी0श्रीवास्तव।3. प्राचीन भारत का इतिहास–प्रो0 सौरभ चौबे। 4.बौद्ध ग्रन्थ– जातक। 5.अर्थशास्त्र–कौटिल्य। 6. आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिर्पोट (1912–1913) इंडिका–मेगस्थनीज।

Kolkata- City of Culture and Diversity

Ira Bhatnagar
Pt. Deendayal Upadhyay Institute of Archaeology,
Archaeological Survey of India, Greater Noida

St. Kolkata, the capital of West Bengal in India, is a testament to the country's rich and diverse heritage. Also known as Calcutta under British rule, this city is a treasure trove of history, culture and architecture. Its heritage is a blend of colonial influences, indigenous traditions and modern developments that create a unique fabric and make it one of India's most fascinating historical cities.

St. Paul's Cathedral, Kolkata

Kolkata, the bustling metropolis known for its rich cultural heritage, is a city that effortlessly blends its colonial history with modernity. One of the most famous monuments of Kolkata's colonial heritage is the Victoria Memorial. This magnificent structure of white marble in Indo-Saracenic style serves as a tribute to Queen Victoria and is a symbol of Kolkata's historical importance. Surrounded by lush gardens, the Victoria Memorial houses an exceptional collection of colonial-era art and artifacts and offers a glimpse into Kolkata's past.

Vidyasagar Setu

Although the Howrah Bridge, officially named Rabindra Setu, is often considered a modern engineering marvel, it is also of historical importance. Completed in 1943, this cantilever bridge connects Kolkata to its twin city, Howrah, across the Hooghly River.With its intricate latticework of steel girders and iconic silhouette, Howrah Bridge remains a symbol of connectivity and an important part of Kolkata's heritage.Vidyasagar Setu, also known as the Second Hooghly Bridge, is a prominent engineering marvel and a vital transportation link in Kolkata, India. Completed in 1992, it spans the Hooghly River, connecting the city with its industrial suburbs. The bridge holds historical importance as it significantly eased traffic congestion and improved connectivity between Kolkata and Howrah, two major urban centers on either side of the river. Named after the 19th-century social reformer Ishwar Chandra-Vidyasagar, the bridge not only stands as a symbol of modern infrastructure but also plays a crucial role in the socio-economic development of the region by facilitating smoother transportation of goods and people. The construction of *Vidyasagar Setu* marked a milestone in the urban development of Kolkata, contributing to the city's growth and connectivity. The 18th-century South Park Street Cemetery is another architectural gem that offers a glimpse into the city's colonial history.

Victoria Memorial

Indian Museum

Museums play an important role in preserving and presenting Kolkata's heritage to residents and tourists alike. Established in 1814, the Indian Museum is one of the largest and oldest museums in India and houses an extensive collection of art, artifacts and historical relics. In addition to serving as a repository of colonial history, Victoria Memorial Hall also hosts exhibitions and cultural events that further enrich the city's cultural heritage.

Cont.——-

Cont. ……...Kolkata- City of Culture and Diversity

Kolkata has always been a melting pot of cultures. It is a city where different communities, religions and traditions live together in harmony. The *Durga Puja* festival, celebrated with great fervour and grandeur, is a testament to this cultural fusion. During this time, the city comes alive with artistic *pandals* (temporary structures) and idols of goddess Durga, attracting visitors from all over the world. Kolkata is also known for its cultural heritage in literature, music and cinema.The city has produced the likes of Rabindranath Tagore, Satyajit Ray and Amartya Sen, whose contributions to literature, film and business have left an indelible mark on the world.

Durga Puja at New Town, Kolkata

Kolkata's culinary heritage is a culinary journey through time and tradition. The highlight is the Bengali cuisine with its diverse flavours and use of spices. The city is famous for its sweets, including the delicious *Rasgulla, Sandesh* and *Mishti Doi*. Bengali cuisine also features hearty delights such as *macher jhol*(fish curry), *kosha mangsho*(spicy *mutton*) and *shorsheilish* (*hilsa fish* in mustard sauce). The city's street food culture is a vibrant and integral part of its culinary identity. From*puchka* (*pani puri*) vendors who line the streets to *kathi* bun stalls serving up succulent kebab-filled buns, Kolkata's street food offers an enticing array of flavours. *Jhalmuri*, a spicy puffed rice snack, is a popular street food that embodies the city's penchant for spicy and savoury dishes.

With its rich history, cultural diversity, architectural wonders and culinary traditions, Kolkata is undoubtedly a cultural city of immense importance. Its ability to seamlessly blend the old with the new, preserving its historical and cultural heritage while embracing the modern, makes it a true gem on the Indian heritage map. Kolkata is not just a city; it is a living testament to the diversity of Indian heritage. As the city continues to evolve and evolve, it is imperative that its legacy dating back to is not only celebrated, but preserved for generations to come, to ensure the city's past remains an integral part of its vibrant future.

(Images Courtesy – Ramyani Sengupta)

Fort Kochi- The Crowning Jewel of the State

Ramyani Sengupta
Immersive Trails, Kolkata
M.A.(Fine) Museology, The Maharaja Sayajirao University of Baroda

Fort Kochi, perfect place that has an equal punch of local cuisine, heritage and culture, lies in the western part of the Kochi city of Ernakulam district in Kerala. It is about 12 km away from Ernakulam Town.Fort Kochi takes its name from the Fort Manuel of Cochin, the first European fort on Indian soil, controlled by the Portuguese East Indies, this astonishingly beautiful seaside place offers a detailed historical significance to its rising from being a small fishing village to the first European township in India.

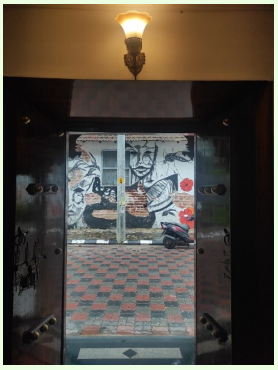

Figure 1: Street Wall Art

With the perfect blend for attracting tourists and history buffs all-round the year, serving as the Kerala's commercial, industrial and financial capital, it is the crowning jewel of the state's tourism landscape. Featuring gorgeous beaches, a far-reaching shoreline, to colonial structures and museums spreading the history of the place from time of the yore, it's a marvellous place for nature lovers and bird watchers.

Originally a fishing village from the time of pre-colonial Kerala in the Kochi Kingdom, attained grandeur and opened a direct sea-route from Europe to India with the advent ofthe Portugueseat Kappad Kozhikode in 1498 C.E.History states that it was Vasco da Gama who discovered the sea route from Europe to India and landed at Kappad near Kozhikode (Calicut) in 1498 C.E. Followed by Pedro Álvares Cabral and Afonso de Albuquerque, built the Fort Emmanuel.

It was the Rajah of Kochi who granted the name Fort Kochi to these Portuguese in 1503 C.E.As the forces of Afonso de Albuquerque helped him fight the forces from Saamoothiri of Kozhikode. It was the Rajah's allowance that led to the construction of Fort Emmanuel near the waterfront to protect their commercial interests. With the onset of the Dutch, many monuments built during and by the Portuguese were destroyed along with fort. The Portuguese built their settlement behind the fort, consisting of a wooden church, which was rebuilt in 1516 as a permanent structure, today known as the St. Francis Church. Built in 1503 C.E., one of the oldest European churches in India holds immense historical significance as a witness to the European colonial establishments in the subcontinent.Vasco da Gama died in Kochi around 1524 C.E. His body is said to be originally buried in this church later remains has been relocated.

Figure 2: St. Francis Church

Figure 3: Santa Cruz Cathedral Basilica

Fort Kochi houses historic significance endowed with architectural and artistic grandeur and colours of the Gothic stylewhich is exemplarily studied by architects and heritage conservators.The Santa Cruz Cathedral Basilica, said to be one of the nine basilicas and heritage edifices of Kerala in India, built by the Portuguese in the 16th century, later destroyed by the British and reconstructed near the end of 19th century.

Cont…..

Cont…..**Fort Kochi- The Crowning Jewel of the State**

Heritage hotels such as the Old Harbour House from the same era have been renovated in recent times. The landmark that causes more public and visitor interest is a series of precolonial Chinese fishing nets on the waterfront, believed to have been introduced by Chinese traders in the early 14th century, introduced by the Chinese explorer Zheng He. Every morning at the Fort Kochi Beach one can see the installation beingcarried by a team of up to six fishermen. Althoughthese nets are used throughout coasts of Southern China and Indo-China, in India they are mostly found in the Indian cities of Kochi and Kollam. Now a hotspot for tourist attraction. Their hypnotic slow rhythm of functioning and their photogenic size and elegant craftsmanship make them a sight to see.

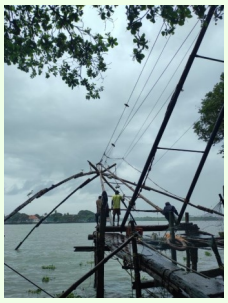

Figure 4: Chinese Fishing Nets

Mattanchery Palace, also known as Dutch Place, a gift from the Portuguese to the Rajas, features Kerala murals depicting portraits and exhibits of the Rajas of Kochi. Later supplanted by the Dutch and the British India. Built in 1568 C.E., the Pardesi Synagogue is located nearby. Adjacent are the vintage stores nestled in the winding lanes of Jew Town, where the majority of the locals have subsequently relocated to Israel.

Figure 5: Mattanchery Palace

Archaeological Museum, Naval Maritime Museum and the Indo-Portuguese Museum at Fort Kochi beautifully showcase archaeological significance to what the Portuguese left their mark on Fort Kochi and the environs, particularly the western regions of Kochi. Part of INS Dronacharya, India's only gunnery school, a new outdoor pavilion showcasing the history of the Indian Navy.

Another important site to see is Vasco House, which is supposed to have been the explorer's real home. It is one of Kochi's oldest Portuguese structures. Experiencing the storied Bishop House is a rewarding endeavour. Large Gothic arches adorn the front of the home, which was purchased by Dom Jos Gomes Ferreira, the 27th Bishop of the Diocese of Cochin.

Figure 6: Archaeological Museum

Whether you are interested in art, music, architecture, history, gastronomy, or just spending a quiet weekend, Fort Kochi has something to offer every type of traveller. As one keeps strolling by the lanes to cover their destinations, aesthetic and vibrant street wall art will catch attention. Every two years Fort Kochi is home to the Kochi-Muziris Biennale festival, international event that started in 2012 sees contemporary artists from around the world invited to showcase their art on the streets, in the galleries, in installations, and on the stage.

Figure 7: Kathakali performance

Last but not the least, what's even the true essence of experiencing if not included food and dance in your list? Kathakali, a 17th-century ancient dance form, is a must-do when visiting Kerala. This traditional arts institution, which is close to Fort Kochi on KB Jacob Road, hosts performances of classical dance and music such as Kalaripayattu and Kathakali dance.Kathakali, in this two-part theatrical style performance without dialogue, usually takes place in two parts- the first part is application of the makeup for an hour and then the performance. Learn about the products used, their expressions and history behind it. Whether you are interested in art, music, architecture, history, gastronomy, or just spending a quiet weekend, Fort Kochi has something to offer every type of traveller.

अजन्ता

सत्यम यादव, शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, एस.एस. खन्ना डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

अजन्ता की गुफाएँ ई0 पू0 द्वितीय शती से सातवीं शती ई0 के मध्य 29 बौध्द स्मारकों के रूप मे निर्मित की गई। अजन्ता की अवस्थिति महाराष्ट्र के संभाजीनगर जिले में निर्देशांक 20°30 उत्तर 75°40 पूर्व पर सह्याद्रि पर्वतमाला से सम्बद्ध अश्वनाल आकृति में बघोरा नदी घाटी के अजिण्ठा नामक ग्राम के समीप शैलकृत गुफा श्रृंखला के रूप में है। इन गुफाओं मे 25 विहार (आवासीय स्थल) जबकि 4 गुफाओं को चैत्य (प्रार्थना हाल) के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। सन् 1819 ई0 में मद्रास रेजीमेन्ट के एक युवा सैन्य अधिकारी जॉन स्मिथ के नेतृत्व वाली एक टुकड़ी द्वारा इन गुफाओं की अचानक खोज की गई थी। 1824 ई0 में जनरल सर जेम्स अलेक्जेंडर ने रॉयल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका में प्रथम बार इसका विवरण प्रकाशित कर संसार को अजन्ता की दुर्लभ चित्रों की जानकारी दी। विद्वानों का मानना है कि अजन्ता की गुफाओं को सातवाहन और वाकाटक, दो अलग–अलग काल में बनाया गया। सातवाहनकालीन गुफा चित्र बौद्ध धर्म के हीनयान सम्प्रदाय के अधिक निकट प्रतीत होती है जबकि वाकाटककालीन गुफाचित्र महायान सम्प्रदाय की प्रेरणा को ग्रहण किये हुए है। इन गुफाओं को वाकाटक राजा हरिसेन के संरक्षण में बौद्ध भिक्षुओं द्वारा बनवाया गया था। अजन्ता की गुफाओं की जानकारी चीनी बौद्ध यात्रियों फाह्यान (चन्द्रगुप्त द्वितीय 380–415ई0) और ह्वेनसांग (सम्राट हर्षवर्धन 606–646ई0) के यात्रा वृतान्तों मे पायी जाती है।

अजन्ता गुफाओं के अधिकांश चित्र नष्ट हो गये अब केवल 6 गुफाओं 1,2,9,10 एवं 16,17 के चित्र अवशिष्ट हैं। इनका समय अलग–अलग है। नवीं–दसवीं गुफाओं के चित्र प्रथम शती ई0पू0 के है, पहली–दूसरी गुफाओं के चित्र सातवीं शती ई0 के तथा सोलहवीं–सत्रहवीं गुफाओं के चित्र गुप्त एवं वाकाटककालीन हैं। अजन्ता के शिल्पियों की प्रमुख विशेषता इसके प्रयोजन को लेकर है उन्होने इन गुफाओं को प्रार्थना एवं प्रवचन के उद्देश्य से निर्मित किया जिसमें गुफा के किसी भाग में बोला गया स्वर पूरी गुफा में आसानी से सुनाई दे, संभवतः वे ध्वनि प्रसरण की तकनीकि से परिचित थे, छतों की कटाई इसप्रकार से हुई है कि ध्वनि को प्रसारित किया जा सके।

नवीं–दसवीं के गुफा चित्रों में राजा–रानी का चित्र, दरबार के बाहर इकट्ठा आमजन, हास–परिहास करती सखियाँ, दर्पण में स्वयं को निहारती रानी, शाम जातक से ली गई कथा जिसमें अपने पुत्र के शव पर विलाप करता राजा एवं उसके पुनः जीवित हो उठने की कथा का चित्र शामिल है, आमजन नंगे पैर जबकि कुलीनजन आभूषण पहने चित्रित है। पहली–दूसरी गुफा चित्रों मे अवलोकितेश्वर का सुन्दर चित्र, बुद्ध का तपस्यारत, कामदेव (मार) कन्याओं के साथ रिझाने का प्रयत्न करते हुए एवं मार पर बुद्ध के विजय का चित्र प्रमुख है। अजन्ता की गुफा संख्या 16 के चित्रों में मरणासन्न राजकुमारी का चित्र सर्वाधिक सुन्दर एवं आकर्षक है, सेविका उसे सहारा देकर ऊपर उठाये है परिवारजन शोकाकुल मुद्रा में खड़े है। राजकुमारी का अंग–प्रत्यगं पीड़ा से कराह रहा है। विद्वानों ने इसकी पहचान बुद्ध के सौतेले भाई नंद की पत्नी सुन्दरी से की है। ग्रिफिथ, फर्ग्यूसन जैसे कलाविदों ने इस चित्र की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। बुध्द से सम्बन्धित चित्रों में माया का स्वप्न, सुजाता द्वारा अन्नग्रहण, पुत्र राहुल और पत्नी द्वारा संघ में प्रवेश की आज्ञा मांगना, तपस्सु और मल्लि का उपदेश शामिल है। सत्रहवीं गुफा जिसे चित्रशाला कहा गया है, यह अधिकतर बुध्द के जन्म, जीवन, मह. ापरिनिर्वाण से सम्बन्धित है। माता और शिशु का चित्र आकर्षक है जिसमें संभवतः बुद्ध की पत्नी अपने पुत्र को उन्हे समर्पित कर रही है। अजन्ता की कलाकृतियाँ तत्कालीन समाज एवं संस्कृति से प्रेरित है। धार्मिक एवं धर्मेत्तर विषयों का चित्रण समन्वयवाद को प्रदर्शित करता है, बनाये गये चित्रों में हीनयानी – महायानी दोनों परम्पराएँ शामिल है कुछेक चित्रों में ब्राह्मणवादी परम्परा जैसे अवतारवाद, य क्ष–यक्षणियाँ, नागदम्पति, ऋषि–मुनियों की आकृतियाँ है। बुद्ध को अभय, वरद एवं भूमिस्पर्श मुद्रा में दिखाया गया है। पारलौकिक जगत की मान्यता और उनसे सम्बन्धित चित्र, लौकिक जीवन में यथार्थवाद के दर्शन, चिन्तन, मोह, श्रृगांर, भय–विषाद भावों का निरूपण, फूल–पत्तियों वनस्पतियों का निरूपण पर्यावरणीय चिंतन भारतीय परम्परा के अनुसार हुआ है। चित्रों को उकेरने में फ्रेस्को टेम्पेरा विधियों का प्रयोग हुआ है। अजन्ता एक अद्वितीय कलात्मक उपलब्धि है, अजन्ता की शैली ने भारत और अन्य जगहों विशेषकर दक्षिण–पूर्व एशिया पर काफी प्रभाव डाला है। इन्ही विशेषताओं के संरक्षण के लिए 1983 ई0 में युनेस्को द्वारा इसे विश्व विरासत स्थल घोषित किया गया। अजन्ता की गुफाओं का प्रबंधन भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के पास है जबकि बफर जोन का प्रबंधन ए0 एस0 आई0, वन विभाग और महाराष्ट्र सरकार सहित प्राचीन स्मारकों और पुरातत्व स्थल सम्बन्धी कानून के माध्यम से हित धारकों के अधीन है।

सन्दर्भ हेतु पठनीय विवरण

अग्रवाल, वासुदेव शरण : भारतीय कला, गैरोला, वाचस्पति : भारतीय संस्कृति और कला :
महाराष्ट्र गवर्नमेंट ऑफीशियल वेब

पुस्तक परिचय

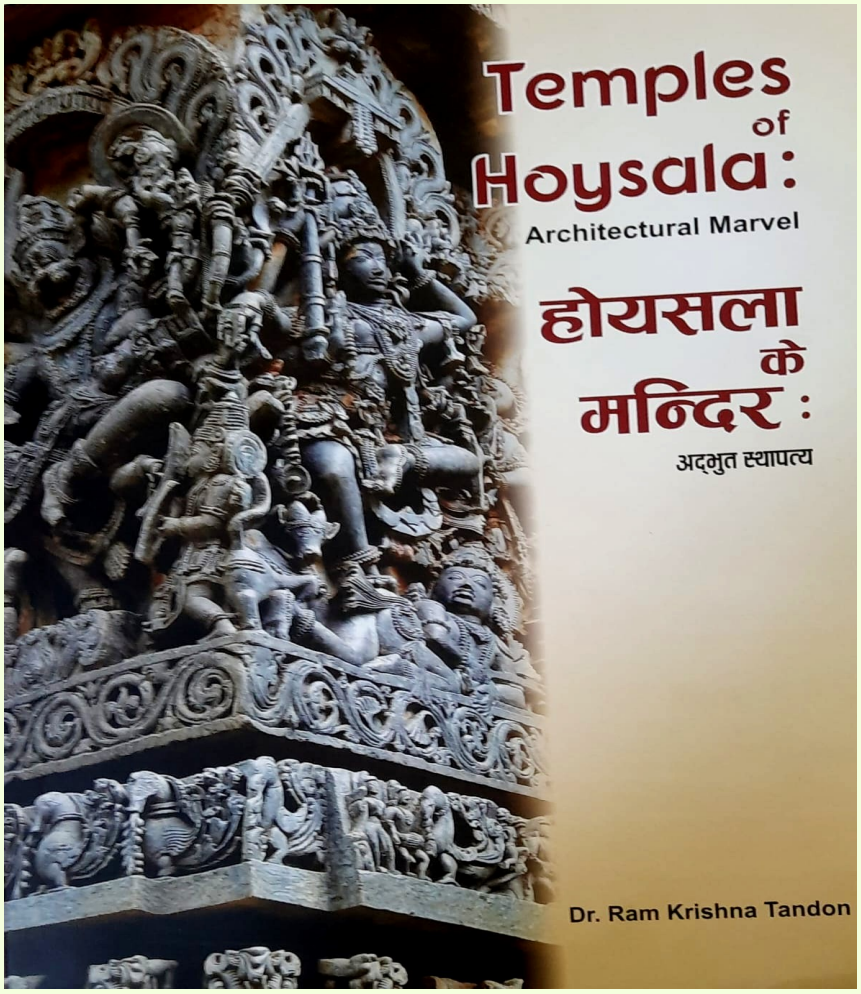

पुस्तक का नाम : होयसला के मंदिरः अद्भुत स्थापत्य
लेखक : डा रामकृष्ण टण्डन
प्रकाशकः विज्ञान परिषद प्रयाग,
पृष्ठ : 192,
मूल्य : रू 1650/
संस्करण : 2024

र समृद्ध कला वैभव के दिग्दर्शक, होयसल मंदिरों, उनपर उत्कीर्ण नक्काशियों और विपुल मूर्ति सम्पदा को समेटे होयसल राजवंश के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत पर केन्द्रित डा आर. के. टण्डन की यह पुस्तक प्राचीन भारतीय कला में रूचि खने वाले अध्येताओं के लिए उपयोगी है, साथ ही यह पुस्तक पुरातन ज्ञान, कला कौशल, अभिव्यक्ति, सौन्दर्य का अभिज्ञान कराकर प्रत्येक भारतीय को देश के गौरव और संस्कृति से भी परिचित कराती है। पुस्तक में दिए सभी छायाचित्र लेखक के ऐतिहासिक स्थलों के पर्यटन और उनके सौन्दर्य को स्वयं अपने कैमरे में कैद कर लेने की रूचि का परिणाम है। प्रोफेसर अजय जैतली के शब्दों में ''डॉ टण्डन के छाया चित्र केवल छायांकन ही नहीं हैं बल्कि यह हमारी विरासत के दस्तावेज भी है।''

लेखक ने अपने ग्रन्थ में आठ प्रमुख बिन्दुओं के अन्तर्गत होयसल मंदिरों का परिचय और उत्कृष्ट छायाचित्रों को प्रस्तुत किया है।

1. बेलूर के चेन्नकेशव मंदिर परिसर, वीरनारायण मंदिर, रंगनायकी मंदिर, सोम्यनायकी मंदिर, कप्पीचेन्नीगरया मंदिर
2. हलेबिदु के होयसलेश्वर और शान्तालेश्वर मंदिर
3. हलेबिदु का केदारेश्वर मंदिर
4. कोरवंगला का बुच्चेश्वरा मंदिर
5. जावाकल का लक्ष्मीनरसिंह मंदिर
6. डोड्डागड्डावली का लक्ष्मीदेवी मंदिर
7 भोसले का नागेश्वरा मंदिर
8. बेलवाडी का वीरनारायण मंदिर

वस्तुतः कर्नाटक में राज्य करने वाले होयसल नरेश प्रारम्भ में जैनमतावलम्बी थे। बाद में उन्होंने वैष्णव धर्म अपना लिया था। बेलूर उनकी पहली राजधानी थी, किन्तु बाद में उन्होने द्वारसमुद्रम में अपनी राजधानी स्थानान्तरित कर ली थी। होयसल वास्तुकला पर गंग और चालुक्य शैली का प्रभाव पडा था। परन्तु होयसल मंदिर न तो नागर, न ही द्राविड और न ही बेसर शेली के कहे जा सकतें हैं। ये मंदिर नागर, द्राविड, और भूमिज के मिश्रित रूप हैं।
होयसल के मंदिर विश्व धरोहर सूची में शामिल हैं।

काव्य के अंश

मगध

यह खँडहर उनका जिनका जग
कभी शिष्य और दास बना था
यह खँडहर उनका जिनसे
भारत भू का इतिहास बना था।

कहते हैं पा चन्द्रगुप्त को
मगध सिन्धुपति सा लहराया
राह रोकने को पश्चिम से
सेल्यूकस सीमा पर आया।

मगधराज की विजय-कथा सुन
सारा भारतवर्ष अभय हो,
विजय किया सीमा के अरि को
राजा चन्द्रगुप्त की जय हो।

यहीं मगध में कहीं एक थी
उरुवेला वनभूमि सुहावन,
जिसे देख रम गया तपस्या में
गौतम सन्यासी का मन।

– रामधारी सिंह दिनकर

मिथिला

मैं जनक कपिल की पुण्य–जननि,
मेरे पुत्रों का महा ज्ञान ।
मेरी सीता ने दिया विश्व
की रमणी को आदर्श–दान।

मैं वैशाली के आसपास
बैठी नित खँडहर में अजान,
सुनती हूँ साश्रु नयन अपने
लिच्छवि–वीरों के कीर्ति–गान।

नीरव निशि में गंडकी विमल
कर देती मेरे विकल प्राण,
मैं खड़ी तीर पर सुनती हूँ
विद्यापति–कवि के मधुर गान।

– रामधारी सिंह

वैशाली (इतिहास के आँसू)/ रामधारी सिंह दिनकर

ओ भारत की भूमि वन्दिनी! ओ जंजीरोंवाली !
तेरी ही क्या कुक्षि फाड़ कर जन्मी थी वैशाली?
वैशाली! इतिहास-पृष्ठ पर अंकन अंगारों का,
वैशाली! अतीत गह्वर में गुंजन तलवारों का।
वैशाली! जन का प्रतिपालक, गण का आदि विधाता,
जिसे ढूँढता देश आज उस प्रजातंत्र की माता।
रुको, एक क्षण पथिक! यहाँ मिट्टी को शीश नवाओ,
राजसिद्धियों की समाधि पर फूल चढ़ाते जाओ।